विशेषांक

UPBIL 04831

शिवशक्ति अंक

मूल्य ₹100

संस्कृति, साहित्य, अध्यात्म और जीवन दर्शन की मासिक द्विभाषी पत्रिका

संस्कृति पर्व

Sanskritiparva

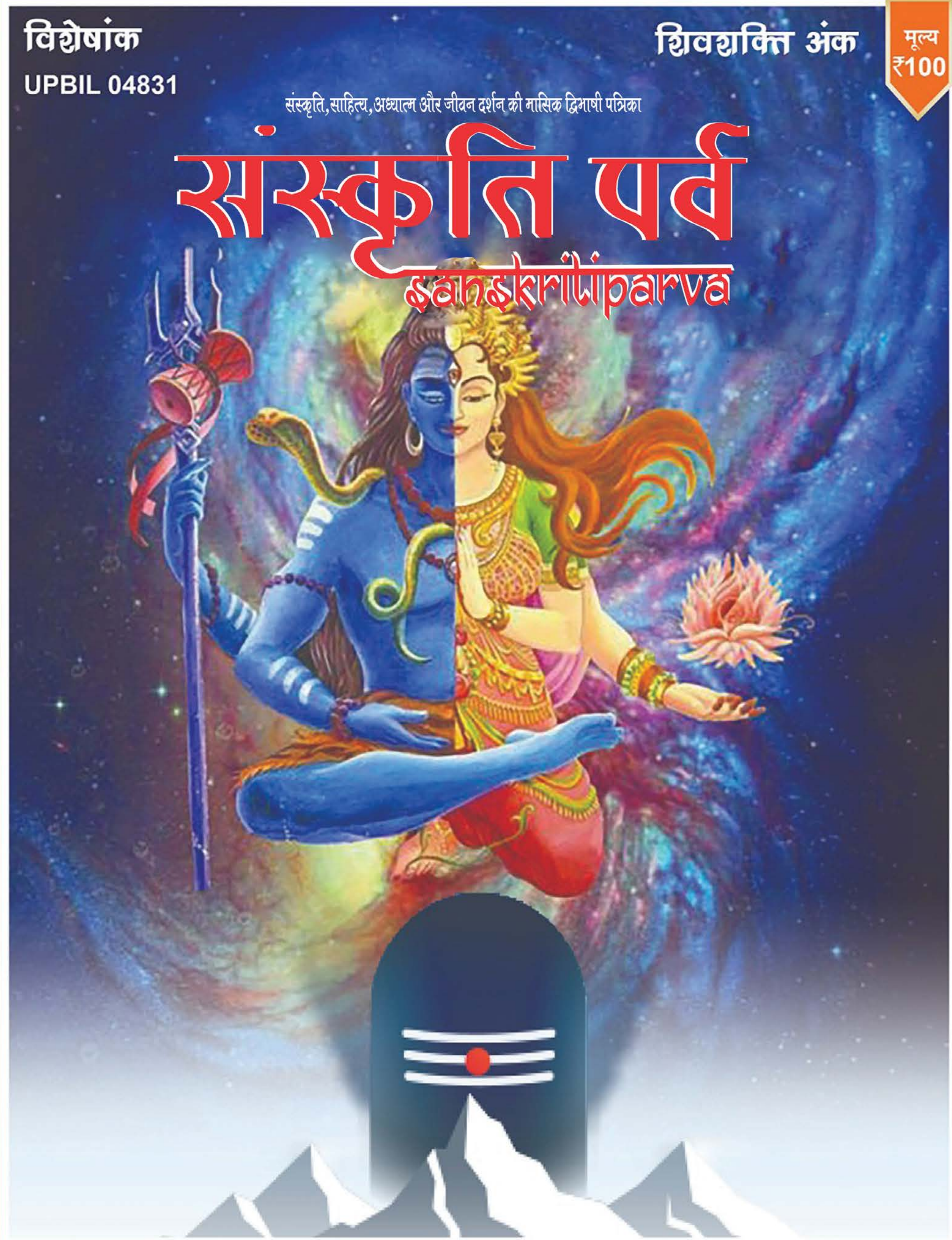

विदेश के लिए मूल्य : $10

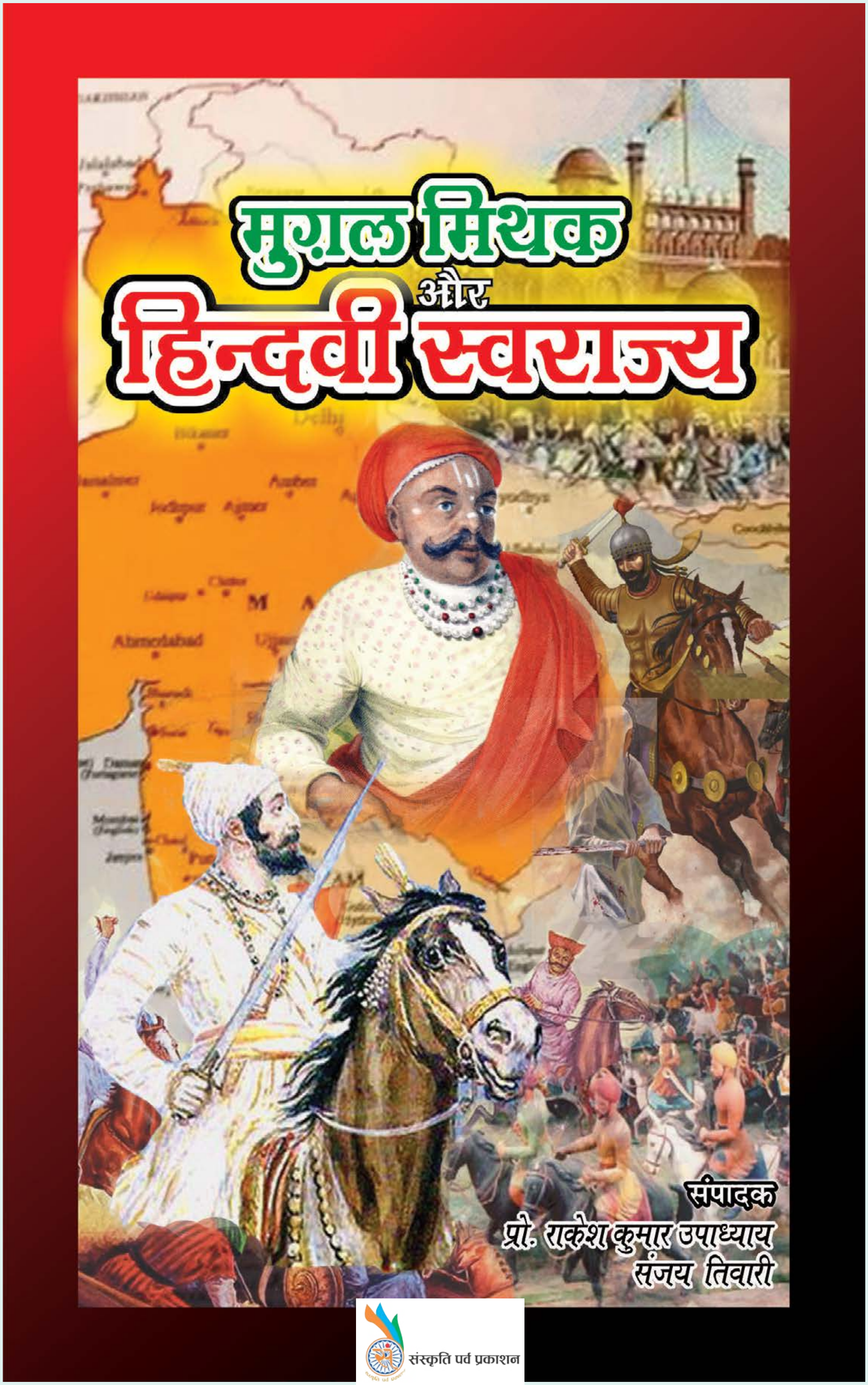
मुग़ल मिथक
और
हिन्दवी स्वराज्य
संपादक
प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय
संजय तिवारी
संस्कृति पर्व प्रकाशन

Mamta sharma is a published author-poet, Artist, Sculptor and lives in San Diego, California, USA. Busy with upcoming book and art projects.

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं०
01	गूढ़ रहस्य हैं शिव	हृदयनारायण दीक्षित	12
02	शिव-शक्ति का मूर्तिमंत प्राकट्य यह संसार	प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय	14
03	कथा ही नही महाविज्ञान और शिव-शक्ति का योग है शिव-पार्वती विवाह	आचार्य लालमणि तिवारी	18
04	द्वादश ज्योतिर्लिंग	संजय राय 'शेरपुरिया'	20
05	सक्षम गुरु से ही समझ सकते हैं शिव तत्व का रहस्य	अनिता अग्रवाल	39
06	भगवान शिव के पैंतीस रहस्य	डॉ. हितेश व्यास	40
07	उपमन्यु की तपस्या फल	कैप्टन सुभाष ओझा	44
08	शिव से जुड़े प्रतीकों के वास्तविक अर्थ	कमलेश कमल	46
09	श्रावणीकर्म	डॉ. आराधना उपाध्याय	48
10	शिवान्वितायै च शिवान्वितायै नमः शिवायै नमः शिवायै	नीता चौबीसा	50
11	सनातन वैदिक भारत की संरक्षक शिवभक्त मां अहिल्याबाई	डॉ. अर्चना तिवारी	55
12	पूर्ण शक्ति पीठ विंध्यवासिनी धाम सृष्टि के पूर्व से सृष्टि के बाद तक आदिशक्ति पीठ	संजय तिवारी	58
13	काव्य फलक	राजेश राज, डॉ. गौरी मिश्रा नीलम दीक्षित, डॉ० भावना कुअँर अर्चना पंडा, श्वेता सिंह 'उमा'	62

पाठकों से

संस्कृति पर्व का यह विशेष अंक आपके हाथों में है। इस अंक के लिये चित्रों का संकलन गूगल से किया गया है जिसके लिए हम उन सभी छायाकारों के प्रति कृतज्ञ हैं। इस अंक मे संभव है कि संपादन अथवा संयोजन में कुछ त्रुटियां रह गयी हों इसलिए हम अपने सुधी पाठकों से अपेक्षा करते हैं कि वे त्रुटियों को नजरअंदाज करेंगें। यह अंक आपको कैसा लगा इस बारे में हमें अपने विचारों से अवश्य अवगत कराईएगा। सनातन संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन में आपका योगदान अत्यंत मूल्यवान है। – सम्पादक

प्रेरणा
परम पूज्य स्वामी अखण्डानंद जी महाराज
संत साहित्य मर्मज्ञ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
ब्रह्मर्षि रेवती रमण पाण्डेय

संस्कृति पर्व
sanskritiparva

शिव शक्ति अंक

वर्ष-4 अंक-5 अगस्त - 2021

सनातन प्रकाश पुंज

जगद्गुरू स्वामी वासुदेवाचार्य जी स्वामी विद्याभास्कर जी महाराज

स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती जी

(महामंत्री, अखिल भारतीय संत समिति एवं गंगा महासभा)

जगद्गुरु स्वामी राघवाचार्य जी (श्री अयोध्या जी)

स्वामी राजकुमार दासजी (श्री अयोध्या जी)

संरक्षक

प्रेम शुक्ल (मुम्बई)

विद्वत परिषद

प्रो० सभाजीत मिश्र - (पूर्व अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, (गो०वि०वि०)
प्रो० दयानाथ त्रिपाठी - (पूर्व अध्यक्ष, आईसीएचआर, नई दिल्ली)
प्रो० संजय द्विवेदी - (निदेशक, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली)
डॉ० लालता प्रसाद मिश्र - (वरिष्ठ अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, लखनऊ)
ए. पी. मिश्र -(अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, लखनऊ)
अमरनाथ सिंह -(समाजसेवी एवं आध्यात्मिक चिंतक)
प्रो० विनय कुमार पाण्डेय -(अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग का० हि० वि० वि०)
प्रो० रामदेव शुक्ल - (पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० माता प्रसाद त्रिपाठी - (पूर्व अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० नन्द किशोर पाण्डेय - (पूर्व अध्यक्ष, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा)
प्रो० सदानंद गुप्त - (कार्यकारी अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान)
श्री मनोजकांत - (सम्पादक राष्ट्रधर्म)
प्रो० अजित के चतुर्वेदी - (निदेशक, आईआईटी रुड़की)
प्रो० सुरेन्द्र दुबे - (पूर्व कुलपति, सिद्धार्थ वि०वि०)
प्रो० राजेन्द्र प्रसाद -(कुलपति, मगध विश्वविद्यालय)
श्री प्रफुल्ल केतकर - (सम्पादक, ऑर्गनाइजर)
डॉ मृणालिनी चतुर्वेदी - (अध्यक्ष क्रायोबैंक इंटरनेशनल, नई दिल्ली)
श्री कृष्णकांत उपाध्याय - (सम्पादक,जनता टीवी, उ. प्र.)
डॉ० देवर्षि शर्मा - (लेखक एवं समाजसेवी, कानपुर)
डॉ० प्रदीप राव - (शिक्षाविद्, गोरखपुर)
प्रो० हिमांशु चतुर्वेदी - (इतिहास विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० राजेन्द्र सिंह - (पूर्व प्रतिकुलपति, (गो०वि०वि०)
श्री आर एल पाण्डेय - (शिक्षाविद् टेक्सास, अमेरिका)
डॉ० नरेश अग्रवाल - (वरिष्ठ बाल रोग विशेषज्ञ, गोरखपुर)
डॉ० आर० सी० श्रीवास्तव - (अवकाशप्राप्त आई०ए०एस०)
राकेश त्रिपाठी - (आई० आर० एस०)
भास्कर दूबे - (वरिष्ठ पत्रकार, लखनऊ)
डॉ० योगेश मिश्र - (समूह सम्पादक, अपना भारत/न्यूज ट्रैक, लखनऊ)

सलाहकार परिषद

अध्यक्ष
श्रीमती रेशमा एच सिंह, (नई दिल्ली)

विशिष्ट सदस्य
श्री कुणाल तिलक, (पुणे)
श्री अनीश गोखले, (बेंगलुरु)
श्री अंबरीष फडणवीस, (मुम्बई)

सदस्य
श्री अजय उपाध्याय (वरिष्ठ पत्रकार, नई दिल्ली)
श्री सुजीत कुमार पाण्डेय
(वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
डॉ० मुन्ना तिवारी (बुन्देलखण्ड वि०वि० झांसी)
दयानंद पाण्डेय (लेखक एवं पत्रकार)
डॉ पुनीत बिसारिया
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, बुंदेलखण्ड वि. वि., झांसी
डॉ० ममता त्रिपाठी (दिल्ली वि०वि०)
श्री सुनील जैन(एडवोकेट, इलाहाबाद)
डॉ. मिथिलेश तिवारी (संगीतज्ञ, गोरखपुर)
आचार्य सोमदत्त द्विवेदी (वाराणसी)
श्री हेमंत मिश्र (निदेशक, एबीसी शिक्षा समूह)
श्री अजय शाही (निदेशक, आरपीएम शिक्षा समूह)
डॉ० गजेन्द्रनाथ मिश्र
(निदेशक, आर०सी० मेमोरियल शिक्षा समूह)
श्री अरुणकांत त्रिपाठी
(सम्पादक, कमलज्योति, लखनऊ)
डॉ० मनोज कुमार श्रीवास्तव
(चिकित्सक एवं लेखक, वाराणसी)
डॉ० वाई के मद्धेशिया
(वरिष्ठ चिकित्सक, कुशीनगर)
श्री मंकेश्वरनाथ पाण्डेय
(सचिव, नेशनल एजुकेशनल सोसाईटी, गोरखपुर)
श्री दीप्तभानु डे (वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
श्री रतिभान त्रिपाठी (वरिष्ठ पत्रकार, लखनऊ)
श्री मारकण्डेयमणि त्रिपाठी
(अध्यक्ष, प्रेस क्लब, गोरखपुर)
श्री पुरुषोत्तम तिवारी
(वरिष्ठ पत्रकार, कोलकाता)
श्री अनुपम सहाय
(वरिष्ठ अधिकारी, पीएनबी)
डॉ० रविकांत तिवारी(अमेरिका)
डॉ० राम शर्मा(शिक्षाविद्, मेरठ)
दिवाकर शर्मा(वरिष्ठ पत्रकार, शिवपुरी)
आमोदकांत मिश्र (वरिष्ठ पत्रकार, कुशीनगर)

प्रधान सम्पादक
श्री हुनमानजी महाराज

सम्पादकीय संरक्षक
आचार्य विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
(पूर्व अध्यक्ष, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)

समूह सम्पादक
प्रो० राकेश कुमार उपाध्याय

प्रबंध सम्पादक
बी के मिश्र

सम्पादक
संजय तिवारी

कार्यकारी सम्पादक
डॉ० अर्चना तिवारी

संपादक विचार
दुर्गेश उपाध्याय

सहायक सम्पादक (हिन्दी)
डॉ० अनिता अग्रवाल

सहायक सम्पादक (अंग्रेजी)
डॉ० राजीव तिवारी

समन्वय सम्पादक
विक्रमादित्य सिंह

सम्पादकीय सलाहकार
डॉ. हितेश व्यास
कैप्टन सुभाष ओझा

सह सम्पादक
डॉ० दिनेशमणि त्रिपाठी
कमलेश कमल
गोविन्द पाराशर

विशेष सम्पादकीय परामर्श
आचार्य लालमणि तिवारी
(गीता प्रेस, गोरखपुर)
श्री रसेन्दु फोगला
(गीता वाटिका, गोरखपुर)
श्री अजीत दुबे
(सदस्य साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)

केन्द्र प्रभारी, अमेरिका
आचार्य रत्नदीप उपाध्याय

विधि सलाहकार
श्री अमिताभ चतुर्वेदी
(वरिष्ठ अधिवक्ता, नई दिल्ली)

लेखा परीक्षक
अरुण गुप्ता

लेआउट, ग्राफिक्स एवं डिजाइन
संजय मानव

सूचना तकनीक एवं प्रबंधन
उत्कर्ष तिवारी

क्रिएटिव
प्रकर्ष तिवारी
(shot by Inflict)

स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक संजय तिवारी द्वारा स्वास्तिक ग्रफिक्स, महागनगर, लखनऊ उ०प्र० से मुद्रित एंव बी–64, आवास विकास कॉलोनी, सूरजकुण्ड, गोरखपुर, उ०प्र० से प्रकाशित

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के लिए संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। किसी भी प्रकार के न्यायिक विवाद का क्षेत्र गोरखपुर जिला न्यायालय के अधीन होगा।

पंजीकृत कार्यालय : बी-64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड, गोरखपुर-273001
लखनऊ कार्यालय : 2/43, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दिल्ली कार्यालय : बी-38 डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024
सम्पर्क - : + 91 94508 87186-87
USA Office : 17413 Blackhawk St | Granada Hills, CA 91344 USA
Cell: 1-818-815-9826

(भारत संस्कृति न्यास का प्रकल्प)

Mail us - editor.sanskritiparva@gmail.com
Website - www.bharatsanskritinyas.org
Follow us

आशीर्वाद

मुझे यह जान कर अतीव प्रसन्नता हो रही है कि इस समय संस्कृति पर्व मासिक पत्रिका भारतीय सनातन मूल्यों की प्रतिनिधि के रूप में निरंतर गतिशील है। सनातन मूल्यों के एक एक अंश को लेकर संस्कृति पर्व के सभी अंक विशेषांक के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं। सनातन विश्व को केंद्रित कर इस पत्रिका का ताजा अंक इसी जुलाई में प्रकाशित हुआ है। इसी माह अब शिव शक्ति अंक के रूप में एक नया विशेषांक प्रकाशित हो रहा है। यह कार्य अखिल भारतीय संत समिति के महामंत्री और श्रीगंगामहासभा के राष्ट्रीय महामंत्री स्वामी जीतेन्द्रानंद जी सरस्वती के मार्गदर्शन में हो रहा है, यह निश्चय ही सनातन संस्कृति के लिए अत्यंत शुभ और मंगलकारी है।

जगद्गुरू
स्वामी वासुदेवाचार्य जी
स्वामी विद्याभास्कर जी महाराज

भारत के स्वाधीनता संग्राम के बीच इस महान संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन के लिए जिस प्रकार का आंदोलन गीता प्रेस के माध्यम से भाई जी हनुमान प्रसाद पोद्दार ने चलाया ठीक वैसा ही आंदोलन आज भारत संस्कृति न्यास और पत्रिका संस्कृति पर्व के माध्यम से संजय तिवारी चला रहे हैं। मेरे संज्ञान में आया है कि इससे पहले शक्ति अंक, ज्योति अंक, कुम्भ अंक, संस्कार अंक, परिवार अंक, महामना अंक, अयोध्या अंक, मुगल- मराठा अंक, ईश्वर चंद्र विद्यासागर और सनातन विश्व जैसे अत्यंत महत्व के विषयों पर विशेषांक प्रकाशित कर संस्कृति पर्व ने एक ऐसा कीर्तिमान स्थापित किया है जो सनातन संस्कृति की पुनर्स्थापना में मील का पत्थर है। निश्चय ही गीता प्रेस के बाद यह दूसरा ऐसा प्रकल्प है जो सनातन संस्कृति के लिए निरंतर क्रियाशील है। संस्कृति पर्व प्रकाशन के माध्यम से भी बहुत महत्व के कार्य हो रहे हैं।

मैं संस्कृति पर्व के इस विशेष अंक के लिए आशीर्वाद देता हूँ तथा कामना करता हूँ कि सनातन संस्कृति के संरक्षण और संवर्द्धन का यह आंदोलन निरंतर गतिशील रहे।

।। ॐ श्रीनारायण।।

सत्सङ्ग

प्रेरणा

एक बार भगवान शिव को जप करते देख माता पार्वती को भ्रम हुआ कि देवों के देव, महादेव भला किसका जप कर रहे हैं। पूछने पर महादेव ने कहा– विष्णुसहस्त्रनाम का। माता पार्वती ने प्रश्न किया कि इन हजार नामों को साधारण मनुष्य भला कैसे जपेंगे। कोई एक नाम बनाइए, जो इन सहस्त्र नामों के बराबर हो और जपा जा सके। माँ भवानी के इस भरम का समाधान करते हुए शिव ने कहा–

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ,

सहस्त्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने।

यानी राम-नाम सहस्त्र नामों के बराबर है। भगवान शिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम और कृष्ण सब एक ही हैं। केवल नाम रूप का भेद है, तत्व में कोई अंतर नहीं। किसी भी नाम से उस परमात्मा की आराधना की जाए, वह उसी सच्चिदानन्द की उपासना है। इस तत्व को न जानने के कारण भक्तों में आपसी मतभेद हो जाता है। परमात्मा के किसी एक नाम रूप को अपना इष्ट मानकर, एकाग्रचित्त होकर उनकी भक्ति करते हुए अन्य देवों का उचित सम्मान व उनमें पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिए।

स्वामी अखंडानंद सरस्वती जी महाराज

प्रबंध सम्पादक की कलम से

सनातन संस्कृति शाश्वत है। शक्ति ही सृष्टि की ऊर्जा है। शिव इसके संचालक हैं। शिव और शक्ति का सम्मिलन ही संसार का कारक और हेतु है। ऐसे विषय पर संस्कृति पर्व ने यदि यह विशेषांक आयोजित किया है तो स्वाभाविक है कि इस संयोजन में अत्यधिक ऊर्जा लगनी है। यह संस्कृति पर्व परिवार के लिए गौरव की बात है कि इस प्रकार के गंभीर और सनातन विन्दुओं को ध्यान में रख कर अंकों का संयोजन किया जा रहा है। संस्कृति पर्व की संपादकीय परिषद को इस कार्य मे कठिन परिश्रम करना पड़ा है, इसका आभास है। भगवान शिव और मां भवानी की महिमा से सभी परिचित हैं। शिव और शक्ति के तात्विक विवेचन और सामान्य पाठक के लिए दर्शन के गूढ़ रहस्यों को सामान्य भाषा में प्रस्तुत करने की कला बहुत महत्वपूर्ण होती है। संस्कृति पर्व का यह अंक निश्चित तौर पर पाठकों के लिए सहज पठनीय सामग्री के साथ उपलब्ध हो रहा है।

इस अंक के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए अपने पाठकों से निवेदन है कि अपने अमूल्य सुझाव अवश्य दें।

बी के मिश्रा

अनंत से सूक्ष्म तक वही तो है

संजय तिवारी

वह अनादि हैं। अनन्त हैं। भूत हैं। वर्तमान हैं। भविष्य हैं। रागी हैं। अनुरागी हैं। वैरागी हैं। नागरिपु और कामरिपु हैं। शक्ति से समाहित शिव हैं। शक्ति रहित शरीर शव है। ऐसे में शिव और शक्ति को अलग अलग देखना, पाना या अनुभव करना सामान्य रूप से संभव नहीं प्रतीत होता। सनातन वैदिक हिन्दू दर्शन, चिंतन और जीवन संस्कृति शिवशक्ति की इस महत्ता को प्रतिपादित भी करती है और प्रमाणित भी। श्रुति, स्मृति, उपनिषद, पुराण, शास्त्र या इतिहास और साहित्य के सनातन वैदिक चिंतन में विराट से सूक्ष्म और सूक्ष्म से विराट की यात्रा को बहुत सलीके से वर्णित, व्याख्यायित और प्रतिपादित किया गया है। आदि, अनंत, अविनाशी को समझना, उसकी शक्ति अर्थात ऊर्जा को विविध स्वरूपों में देखना, उसके सम्मिलित स्वरूप को रेखांकित करना और सामान्य रूप से बता देना, इतना आसान भी नही है। इसीलिए पूज्य महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने जब परम ब्रह्म यानी भगवान श्रीराम की कथा लिखी तो प्रारंभ में उन्होंने शिव शक्ति सम्मिलन को ही आधार बनाया। श्रीमद रामचरित मानस में वर्णित शिव विवाह की कथा लोक को शिव और शक्ति के सम्मिलन का आधार समझाने के लिए ही है। निर्गुण, निराकार परमब्रह्म जब सगुण साकार मानव रूप में पृथ्वी की सृष्टि में स्वयं को लाते हैं तब तो यह और भी आवश्यक है कि शिव और शक्ति के सम्मिलन की महत्ता को लोक समझे। सृष्टि की इसी संचालन शक्ति चेतना को योग और महाविज्ञान भी स्थापित करते हैं।

यदि अपने शास्त्रों का ही आश्रय लें तो शिव पुराण के अनुसार शिव-शक्ति का संयोग ही परमात्मा है। शिव की जो पराशक्ति है उससे चित् शक्ति प्रकट होती है। चित् शक्ति से आनंद शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, आनंद शक्ति से इच्छाशक्ति का उद्भव हुआ है, इच्छाशक्ति से ज्ञानशक्ति और ज्ञानशक्ति से पांचवीं क्रियाशक्ति प्रकट हुई है। इन्हीं से निवृत्ति आदि कलाएं उत्पन्न हुई हैं। चित् शक्ति से नाद और आनंदशक्ति से बिंदु का प्राकट्य बताया गया है। इच्छाशक्ति से 'म' कार प्रकट हुआ है। ज्ञानशक्ति से पांचवां स्वर 'उ' कार उत्पन्न हुआ है और क्रियाशक्ति से 'अ' कार की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार प्रणव (ॐ) की उत्पत्ति हुई है। शिव से ईशान उत्पन्न हुए हैं, ईशान से तत्पुरुष का प्रादुर्भाव हुआ है। तत्पुरुष से अघोर का, अघोर से वामदेव का और वामदेव से सद्योजात का प्राकट्य हुआ है। इस आदि अक्षर प्रणव से ही मूलभूत पांच स्वर और तैंतीस व्यजंन के रूप में अड़तीस अक्षरों का प्रादुर्भाव हुआ है। उत्पत्ति क्रम में ईशान से शांत्यतीताकला उत्पन्न हुई है। ईशान से चित् शक्ति द्वारा मिथुनपंचक की उत्पत्ति होती है। अनुग्रह, तिरोभाव, संहार, स्थिति और सृष्टि इन पांच कृत्यों का हेतु होने के कारण उसे पंचक कहते हैं। यह बात तत्वदर्शी ज्ञानी मुनियों ने कह है। वाच्य वाचक के संबंध से उनमें मिथुनत्व की प्राप्ति हुई है। कला वर्णस्वरूप इस पंचक में भूतपंचक की गणना है। आकाशादि के क्रम से इन पांचों मिथुनों की उत्पत्ति हुई है। इनमें पहला मिथुन है आकाश, दूसरा वायु, तीसरा अग्नि, चौथा जल और पांचवां मिथुन पृथ्वी है।

इनमें आकाश से लेकर पृथ्वी तक के भूतों का जैसा स्वरूप बताया गया है, वह इस प्रकार है - आकाश में एकमात्र शब्द ही गुण है, वायु में शब्द और स्पर्श दो गुण हैं, अग्नि में शब्द, स्पर्श और रूप इन तीन गुणों की प्रधानता है, जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये चार गुण माने गए हैं तथा पृथ्वी शब्द, स्पर्श, रूप , रस और गंध इन पांच गुणों से संपन्न है। यही भूतों का व्यापकत्व कहा गया है अर्थात् शब्दादि गुणों द्वारा आकाशादि भूत वायु आदि परवर्ती भूतों में किस प्रकार व्यापक है, यह दिखाया गया है। इसके विपरीत गंधादि गुणों के क्रम से वे भूत पूर्ववर्ती भूतों से व्याप्य हैं अर्थात् गंध गुणवाली पृथ्वी जल का और रसगुणवाला जल अग्नि का व्याप्य है, इत्यादि रूप से इनकी व्याप्यता को समझना चाहिए। पांच भूतों (महत् तत्व) का यह विस्तार ही प्रपंच कहलाता है।

सर्वसमष्टि की जो ऊर्जाशक्तिआत्मा है, उसी का नाम विराट है और पृथ्वी तल से लेकर क्रमशः शिवतत्व तक जो तत्वों का समुदाय है वही ब्रह्मांड है। वह क्रमशः तत्वसमूह में लीन होता हुआ अंततोगत्वा सबके जीवनभूत चैतन्यमय परमेश्वर में ही लय को प्राप्त होता है और सृष्टिकाल में फिर शक्ति द्वारा शिव से निकल कर स्थूल प्रपंच के रूप में प्रलयकालपर्यंत सुखपूर्वक स्थित रहता है। अपनी इच्छा से संसार की सृष्टि के लिए उद्यत हुए महेश्वर का जो प्रथम परिस्पंद है, उसे शिवतत्व कहते हैं। यही इच्छाशक्ति तत्व है, क्योंकि संपूर्ण कृत्यों में इसी का अनुवर्तन होता है। ज्ञान और क्रिया, इन दो शक्तियों में जब ज्ञान का आधिक्य हो, तब उसे सदाशिवतत्व समझना चाहिए, जब क्रियाशक्ति का उद्रेक हो तब उसे महेश्वर तत्व जानना चाहिए तथा जब ज्ञान और क्रिया दोनों शक्तियां समान हों तब वहां शुद्ध विद्यात्मक तत्व समझना चाहए। जब शिव अपने रूप को माया से निग्रहीत करके संपूर्ण पदार्थों को ग्रहण करने लगता है, तब उसका नाम पुरुष होता है।

पुराणों में उल्लेख मिलता है कि सृष्टि के निर्माण के हेतु शिव ने अपनी शक्ति को स्वयं से पृथक किया। शिव स्वयं पुल्लिंग के तथा उनकी शक्ति स्त्री लिंग की द्योतक हैं। पुरुष (शिव) एवं स्त्री (शक्ति) का एका होने के कारण शिव नर भी हैं और नारी भी, अतः वे अर्धनरनारीश्वर हैं। जब ब्रह्मा ने सृजन का कार्य आरंभ किया तब उन्होंने पाया कि उनकी रचनाएँ अपने जीवनोपरांत नष्ट हो जाएंगी तथा हर बार उन्हें नए सिरे से सृजन करना होगा। गहन विचार के उपरांत भी वो किसी भी निर्णय पर नहीं पहुँच पाए। तब अपने समस्या के सामाधान के हेतु वो शिव की शरण में पहुँचे। उन्होंने शिव को प्रसन्न करने हेतु कठोर तप किया। ब्रह्मा की कठोर तप से शिव प्रसन्न हुए। ब्रह्मा के समस्या के सामाधान हेतु शिव अर्धनारीश्वर स्वरूप में प्रगट हुए। आधे भाग में वे शिव थे तथा आधे में शिवा। अपने इस स्वरूप से शिव ने ब्रह्मा को प्रजननशील प्राणी के सृजन की प्रेरणा प्रदान की। साथ ही साथ उन्होंने पुरूष एवं स्त्री के सामान महत्व का भी उपदेश दिया। शक्ति शिव की अभिभाज्य अंग हैं। शिव नर के द्योतक हैं तो शक्ति नारी की। वे एक दूसरे के पूरक हैं। शिव के बिना शक्ति का अथवा शक्ति के बिना शिव का कोई अस्तित्व ही नहीं है। शिव अकर्ता हैं। वह संकल्प मात्र करते हैं। शक्ति संकल्प सिद्धि करती हैं।

योग के साधक इसी शिव तत्व और उनकी शक्ति की साधना कर योगी बनते हैं। विराट को सूक्ष्म में अवस्थित कर योग जिस आनंद को पाने का मार्ग है वह आनंद ही सत्य है, शिव है, सुंदर है। सत्यम, शिवम सुंदरम के इसी उद्घोष को सनातन वैदिक संस्कृति सर्वथा स्थापना देती आयी है। शिव और शक्ति के इसी सम्मिलन को योग में अलग प्रकार से वर्णित और व्याख्यायित किया गया है। सद्गुरू कहते हैं कि अगर आप रीढ़ की शारीरिक बनावट के बारे में जानते हैं, तो आप जानते होंगे कि रीढ़ के दोनों ओर दो छिद्र होते हैं, जो वाहक नली की तरह होते हैं, जिनसे होकर सभी धमनियां गुजरती हैं। ये इड़ा और पिंगला, यानी बायीं और दाहिनी नाड़ियां हैं। शरीर के ऊर्जा-कोष में, जिसे प्राणमयकोष कहा जाता है, 72,000 नाड़ियां होती हैं। ये 72,000 नाड़ियां तीन मुख्य नाड़ियों- बाईं, दाहिनी और मध्य यानी इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना से निकलती हैं। 'नाड़ी' का मतलब धमनी या नस नहीं है। नाड़ियां शरीर में उस मार्ग या माध्यम की तरह होती हैं जिनसे प्राण का संचार होता है। इन 72,000 नाड़ियों का कोई भौतिक रूप नहीं होता। यानी अगर आप शरीर को काट कर इन्हें देखने की कोशिश करें तो आप उन्हें नहीं खोज सकते। लेकिन जैसे-जैसे आप अधिक सजग होते हैं, आप देख सकते हैं कि ऊर्जा की गति अनियमित नहीं है, वह तय रास्तों से गुजर रही है। प्राण या ऊर्जा 72,000 अलग-अलग रास्तों से होकर गुजरती है। इड़ा और पिंगला जीवन की बुनियादी द्वैतता की प्रतीक हैं। इस द्वैत को हम परंपरागत रूप से शिव और शक्ति का नाम देते हैं। आप इसे बस पुरुषोचित और स्त्रियोचित कह सकते हैं, या यह आपके दो पहलू – लॉजिक या तर्क-बुद्धि और इंट्यूशन या सहज-ज्ञान हो सकते हैं। जीवन की रचना भी इसी के आधार पर होती है।

“शिव नर के द्योतक हैं तो शक्ति नारी की। वे एक दूसरे के पूरक हैं। शिव के बिना शक्ति का अथवा शक्ति के बिना शिव का कोई अस्तित्व ही नहीं है। शिव अकर्ता हैं। वह संकल्प मात्र करते हैं। शक्ति संकल्प सिद्धि करती हैं। योग के साधक इसी शिव तत्व और उनकी शक्ति की साधना कर योगी बनते हैं। विराट को सूक्ष्म में अवस्थित कर योग जिस आनंद को पाने का मार्ग है वह आनंद ही सत्य है, शिव है, सुंदर है। सत्यम, शिवम सुंदरम के इसी उद्घोष को सनातन वैदिक संस्कृति सर्वथा स्थापना देती आयी है। शिव और शक्ति के इसी सम्मिलन को योग में अलग प्रकार से वर्णित और व्याख्यायित किया गया है।”

इन दोनों गुणों के बिना, जीवन ऐसा नहीं होता, जैसा वह अभी है। सृजन से पहले की अवस्था में सब कुछ मौलिक रूप में होता है। उस अवस्था में द्वैत नहीं होता। लेकिन जैसे ही सृजन होता है, उसमें द्वैतता आ जाती है। पुरुषोचित और स्त्रियोचित का मतलब लिंग भेद से – या फिर शारीरिक रूप से पुरुष या स्त्री होने से – नहीं है, बल्कि प्रकृति में मौजूद कुछ खास गुणों से है। प्रकृति के कुछ गुणों को पुरुषोचित माना गया है और कुछ अन्य गुणों को स्त्रियोचित। आप भले ही पुरुष हों, लेकिन यदि आपकी इड़ा नाड़ी अधिक सक्रिय है, तो आपके अंदर स्त्री-प्रकृति यानि स्त्रियोचित गुण हावी हो सकते हैं। आप भले ही स्त्री हों, मगर यदि आपकी पिंगला अधिक सक्रिय है, तो आपमें पुरुष-प्रकृति यानि पुरुषोचित गुण हावी हो सकते हैं। अगर आप इड़ा और पिंगला के बीच संतुलन बना पाते हैं तो दुनिया में आप प्रभावशाली हो सकते हैं। इससे आप जीवन के सभी पहलुओं को अच्छी तरह संभाल सकते हैं। अधिकतर लोग इड़ा और पिंगला में जीते और मरते हैं, मध्य स्थान सुषुम्ना निष्क्रिय बना रहता है। लेकिन सुषुम्ना मानव शरीर-विज्ञान का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। जब ऊर्जा सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करती है, जीवन असल में तभी शुरू होता है। मूल रूप से सुषुम्ना गुणहीन होती है, उसकी अपनी कोई विशेषता नहीं होती। वह एक तरह की शून्यता या खाली स्थान है। अगर शून्यता है तो उससे आप अपनी मर्जी से कोई भी चीज बना सकते हैं। सुषुम्ना में ऊर्जा का प्रवेश होते ही, आपमें वैराग्य आ जाता है। 'राग' का अर्थ होता है, रंग। 'वैराग्य' का अर्थ है, रंगहीन यानी आप पारदर्शी हो गए हैं। आप अगर इड़ा या पिंगला के प्रभाव में हैं तो आप बाहरी स्थितियों को देखकर प्रतिक्रिया करते हैं। लेकिन एक बार सुषुम्ना में ऊर्जा का प्रवेश हो जाए, तो आप एक नए किस्म का संतुलन पा लेते हैं। अगर आप पारदर्शी हो गए, तो आपके पीछे लाल रंग होने पर आप भी लाल हो जाएंगे। अगर आपके पीछे नीला रंग होगा, तो आप नीले हो जाएंगे। आप निष्पक्ष हो जाते हैं। आप जहां भी रहें, आप वहीं का एक हिस्सा बन जाते हैं लेकिन कोई चीज आपसे चिपकती नहीं। आप जीवन के सभी आयामों को खोजने का साहस सिर्फ तभी करते हैं, जब आप आप वैराग की स्थिति में होते हैं। अभी आप चाहे काफी संतुलित हों, लेकिन अगर किसी वजह से बाहरी स्थिति अशांतिपूर्ण हो जाए, तो उसकी प्रतिक्रिया में आप भी अशांत हो जाएंगे क्योंकि इड़ा और पिंगला का स्वभाव ही ऐसा होता है। अगर आप इड़ा या पिंगला के प्रभाव में हैं तो आप बाहरी स्थितियों को देखकर प्रतिक्रिया करते हैं। लेकिन एक बार सुषुम्ना में ऊर्जा का प्रवेश हो जाए, तो आप एक नए किस्म का संतुलन पा लेते हैं, एक अंदरूनी संतुलन, जिसमें बाहर चाहे जो भी हो, आपके अंदर एक खास जगह होती है, जो किसी भी तरह की हलचल में कभी अशांत नहीं होती, जिस पर बाहरी स्थितियों का असर नहीं पड़ता। आप चेतनता की चोटी पर सिर्फ तभी पहुंच सकते हैं, जब आप अपने अंदर यह स्थिर अवस्था बना लें। योगी यही तो करते हैं। इसीलिए योग और साधना के लिए साधक प्रकृति के निकट और एकांत की तलाश करते हैं। पर्वत, वन, गुफाएं उनके लिए साधनानुकूल परिवेश देते हैं। इस दृष्टि से यदि शिव पार्वती के विवाह की कथा को गहराई से विवेचित किया जाय तो बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है।

यह विषय अत्यंत गूढ़ और विराट है। आप का आशीर्वाद और स्नेह मिलेगा तो इसी विषय पर आगे भी अंक संयोजित करने का प्रयास रहेगा। इतने विराट और गंभीर विषय को संयोजित करने में अभी बहुत कुछ शेष रह गया है।

सम्पादक

'राग' का अर्थ होता है, रंग। 'वैराग्य' का अर्थ है, रंगहीन यानी आप पारदर्शी हो गए हैं। आप अगर इड़ा या पिंगला के प्रभाव में हैं तो आप बाहरी स्थितियों को देखकर प्रतिक्रिया करते हैं। लेकिन एक बार सुषुम्ना में ऊर्जा का प्रवेश हो जाए, तो आप एक नए किस्म का संतुलन पा लेते हैं। अगर आप पारदर्शी हो गए, तो आपके पीछे लाल रंग होने पर आप भी लाल हो जाएंगे। अगर आपके पीछे नीला रंग होगा, तो आप नीले हो जाएंगे। आप निष्पक्ष हो जाते हैं। आप जहां भी रहें, आप वहीं का एक हिस्सा बन जाते हैं लेकिन कोई चीज आपसे चिपकती नहीं। आप जीवन के सभी आयामों को खोजने का साहस सिर्फ तभी करते हैं, जब आप आप वैराग की स्थिति में होते हैं।

चिंतन

गूढ़ रहस्य हैं शिव

हृदयनारायण दीक्षित

हम भारतवासी बहुदेव उपासक हैं लेकिन बहुदेववादी नहीं। बहुदेव उपासना हमारा स्वभाव है। शिव एशिया के बड़े भाग में प्रचलित देव हैं। शिव देव नहीं महादेव हैं। वे हजारों बरस से भारत के मन में रमते हैं। एक अकेले ही। एको रुद्र द्वितीयोनास्ति। कुछेक विद्वान रुद्र शिव को आयातित देवता मानते हैं। शिव उपासना पश्चिम एशिया व मध्य एशिया तक विस्तृत थी भी। वे इसी क्षेत्र को शिव उपासना का मूल केन्द्र बताने की गलती करते हैं लेकिन प्रख्यात मार्क्सवादी चिन्तक डॉ. रामविलास शर्मा ने भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश (पृष्ठ 679) में लिखा है- "वास्तव में शैवमत, वैष्णवमत, बौद्धमत इन सबके स्रोत भारत में थे। यहां से इन मतों का प्रसार मध्य एशिया और पश्चिमी एशिया में हुआ।" शिव उपासना का मूल केन्द्र भारत है। यजुर्वेद प्राचीन है। इसका 16वां अध्याय शिव की ही स्तुति है। यहां शिव कण-कण में व्याप्त चेतना हैं।

संसार क्षर से क्षर की यात्रा है। भौतिक से भौतिक की ओर लेकिन जीवन में भौतिक के साथ चेतन भी है। अन्तर्यात्रा स्थूल से सूक्ष्म की यात्रा है। पत्ती, पुष्प से पेड़ और पेड़ से जड़ की यात्रा सुगम है। जड़ें देखते ही बीज का ध्यान आता है। फूल का पकना ही बीज है। बीज के भीतर अनंत संभावनाएं हैं। फिर पेड़, शाखा, पत्तियां और फूल। फिर-फिर बीज। ओम् बीज के भीतर की प्राण शक्ति है और सोम इसी बीज का पल्लवन पुष्पन। ऋग्वेद के सोम कम लोगों को याद हैं लेकिन सोमवार हर सातवें दिन उन्हीं की स्मृति दिलाता है। सोम से ओम् की यात्रा शिव है। यहां कोई भौगोलिक दूरी नहीं। सोम और ओम् साथ-साथ हैं। सोम शिव के ललाट पर हैं ही। शिव रूपक का सोम प्रतीक बड़ा प्यारा है। ऋग्वेद में सोम को पृथ्वी का निवासी बताया गया है। सोम असाधारण देवता हैं। वे जलों के पुत्र हैं और आनंददाता हैं।

> **सत्य, शिव और सुंदर की त्रयी विचारणीय है। इस त्रयी में सत्य महत्वपूर्ण है लेकिन सत्य को शिव भी होना चाहिए। सत्य और शिव का एकात्म सुंदर होता है। शिव अखिल ब्रह्म की ऊर्जा हैं। शिव और लोकमंगल पर्यायवाची हैं। लेकिन यह ऊर्जा सहज प्राप्य नहीं है। शिव प्राप्ति के प्रयास जरूरी हैं।**

सत्य, शिव और सुंदर की त्रयी विचारणीय है। इस त्रयी में सत्य महत्वपूर्ण है लेकिन सत्य को शिव भी होना चाहिए। सत्य और शिव का एकात्म सुंदर होता है। शिव अखिल ब्रह्म की ऊर्जा हैं। शिव और लोकमंगल पर्यायवाची हैं। लेकिन यह ऊर्जा सहज प्राप्य नहीं है। शिव प्राप्ति के प्रयास जरूरी हैं। पार्वती को भी शिव प्राप्ति के लिए महातप करना पड़ा था। कालिदास के 'कुमार संभव' में तपरत पार्वती को एक ब्रह्मचारी ने बहुत भड़काया- "पार्वती! आप भी किस प्रेम में फंस गई। आपका सुंदर हाथ सांप लिपटे शंकर को कैसे छुएगा। कहां हंस छपी चूनर ओढ़े आप और कहां खाल ओढ़े शंकर?" शिव शंकर के रूप-कुरूप पर उसने बहुत कुछ कहा। पार्वती ने कहा "संसार के सारे रूप शिव के ही हैं- विश्वकूर्तेखाधार्यते वपु।" शिव ही सभी रूपों में प्रकट होकर रूप-रूप प्रतिरूप हैं। कालिदास के कथानक में तब शिव ने अपना रूप प्रकट कर दिया। शिव बोले "अब मैं तुम्हारा दास हूं, पार्वती- तवस्मि दासः।" मन करता है कि प्रश्न पूछूं शिव से- महादेव! इतना कठोर तप क्यों कराते हैं? लेकिन अपना प्रश्न वापस भी लेता हूं। शिव तप का पुरस्कार भी तो देते हैं। तप प्रभाव में वे स्वयं भक्त के भी भक्त बन जाते हैं।

(लेखक, उत्तर प्रदेश विधानसभाध्यक्ष हैं।)

ऋग्वेद वाले रूद्र शिव 'सुगंधिं पुष्टिवर्द्धनं' हैं। देवों को पुष्पार्चन किया जाता है लेकिन शिव को बेलपत्र और धतूरे का फल। शिव मस्त मस्त बिंदास देवता हैं। परम योगी। चरमोत्कर्ष वाले नृत्यकर्ता। श्रीकृष्ण के पास बांसुरी तो शिव के पास डमरू। बांसुरी की धुन पर तीनों लोक मोहित हुए थे तो डमरू की धुन पर तीनों लोक अस्तित्व में रहते हैं। शिव जब चाहते हैं, रुद्र हो जाते हैं। प्रलयंकर हो जाते हैं लेकिन यही रुद्र शिव भी हैं। ऋग्वेद में "जो रुद्र है, वही शिव भी है।" त्रिशूल उनका हथियार। सोचता हूं कि ये तीन शूल क्या हैं? ये दैविक, दैहिक और भौतिक कष्ट तो नहीं हैं? या भौतिक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक वेदनाएं हैं। शिव दुख हारी हैं- त्रिशूल धारक जो हैं। लेकिन सोचने से मन नहीं भरता। मन यहां-वहां, जहां-तहां भागता ही है। मैं मन ही मन यजुर्वेद के शिव संकल्प मंत्र दोहराता हूं- "हमारा मन भागता है। यहां वहां। ऐसा हमारा मन शिव संकल्प से भरापूरा हो- तन्मे मनः शिव संकल्पं अस्तु।" मैं राजनीति में हूं सो मंच, माला, माइक का त्रिशूल भीतर गहरे तक धंसा हुआ है। कह सकता हूं कि मैं भी त्रिशूलधारी हूं। सोम सामने है, भीतर ओम है। लेकिन सोम से वंचित हूं। ओम् की अनुभूति नहीं। पढ़ा-सुना काम आता नहीं। करूं तो क्या करूं? ऋग्वेद के ऋषि वशिष्ठ ने आर्तभाव से पुकारा था त्र्यम्बक रुद्र को- हमें पकी ककड़ी की तरह मृत्यु बंधन से मुक्त करो। मैं स्वयं भी डंठल से चिपका हुआ पका फल हूं। शिव निर्णय लें कि मुझे 'उर्वारूकमिव बन्धनान मृत्योरमोक्षीय' मृत्युबंधन कब मुक्त करना है?

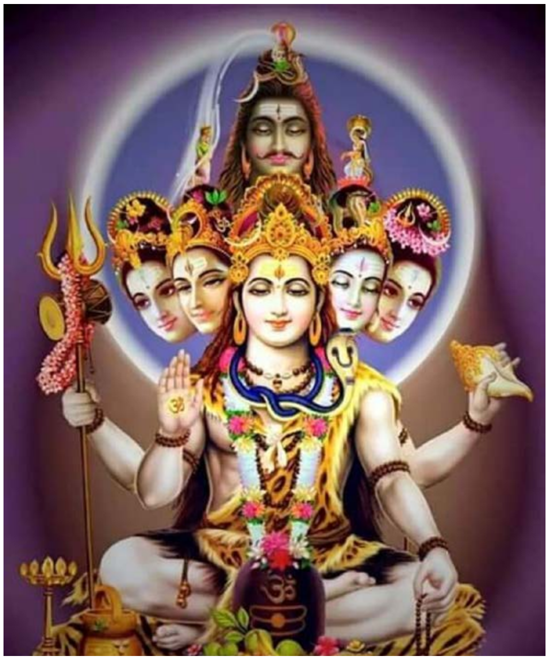

शिव सोम प्रेमी हैं। सोम प्रकृति की सृजन शक्ति है। सृजन की यही शक्ति शिव ललाट की दीप्ति है। शिव के माथे पर सोम चन्द्र हैं। ऋग्वेद के ऋषियों के दुलारे सोम वनस्पतियों के राजा हैं। सोम प्रसन्न होते हैं, वनस्पतियां औषधियां उगती हैं खिलती हैं खिलखिलाती हैं। भारतीय सप्ताह में एक दिन सोम का। पहला दिन रविवार रवि का तो दूसरा दिन सोमवार सोम का। शिवभक्तों को सोमवार प्रीतिकर है। शिव भी सोमवार का दिन भक्तों के लिए ही खाली रखते होंगे। मैं सच नहीं जानता। रुद्राभिषेक कभी किया नहीं? काशी बहुत जाता हूं लेकिन मंदिर में शिव पूजन दर्शन बहुत पहले एक बार ही हुआ। मैंने समूची वाराणसी को सोम शिव पाया। हर-हर महादेव की गूंज व लोक उल्लास। पौराणिक शिव बड़े आकर्षक हैं। बैल की सवारी और पार्वती से बतरस। 'विज्ञान भैरवतंत्र' में शिव और पार्वती के मध्य गहन दार्शनिक संवाद का उल्लेख है। कालिदास ने शिव बारात का मनोरम शब्द चित्र खींचा है। बताया है कि शिव बारात नगर पहुंची। स्त्रियां अपना कामधाम छोड़कर छतों की ओर भागी। एक की जूड़े की माला टूट गई। एक ने दांयी आंख में ही काजल लगाया था, वह बाई आंख का काजल लगाना छोड़ भाग चली। पार्वती-शिव जगत् के माता-पिता हैं। विवाह के बाद सभी देवों ने शुभकामनाएं दीं।" सूरदास भी श्रीकृष्ण की बारात में गाना चाहते थे- सूरदास होई कुटिल बराती गीत सुमंगल गइहौं। अजब अंतर्विरोध, सुमंगल गीत लेकिन कुटिल बराती।

भारतीय साहित्य शिव-पार्वती के सम्वाद से भरा-पूरा है। पार्वती प्रश्नाकुल हैं और शिव समाधानकर्ता। तुलसीदास के रामचरित मानस में पार्वती ने सीधे राम के अस्तित्व पर ही प्रश्न पूछा। शिव ने ब्रह्म तत्व समझाया लेकिन पार्वती ने स्वयं परीक्षा ली। यह भी उचित था। अनुभव करना सुनने से ज्यादा श्रेष्ठ है। लेकिन शिव सब जानते थे। वे प्रतिपल यत्र तत्र सर्वत्र उपस्थित हैं। उनके कण्ठ में विष है। वे नीलकंठ हैं। गले में सांप भी हैं लेकिन चन्द्रमा शिव का प्रिय आभूषण है। शरद् चन्द्र की पूनो शिव रस सोम की ही वर्षा करती है। सोम और चन्द्र पर्यायवाची हैं। शिव ने सनत कुमारों को बताया कि उनके तीन नेत्र हैं। सूर्य दायां नेत्र है और बायां चन्द्रमा। अग्नि मध्य नेत्र हैं।

शिव भोले शंकर हैं, औघड़दानी हैं। गण समूहों के मित्र हैं। गणों के साथ स्वयं भी नृत्य करते हैं। गण देवता गणेश स्वाभाविक ही उनके पुत्र हैं। वे रुद्र शिव एशिया के बड़े भूभाग में प्राचीन काल से ही उपासित हैं। शिव गूढ़ रहस्य हैं। युधिष्ठिर के मन में शिव जिज्ञासा थी। शर शैय्या पर लेटे भीष्म से उन्होंने तमाम प्रश्न पूछे थे। वे भीष्म से शिव गुण भी सुनना चाहते थे। भीष्म ने कहा, "शिवगुणों का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूं। वे सर्वत्र व्यापक हैं। वे प्रकृति से परे और पुरुष से विलक्षण हैं। श्रीकृष्ण के अलावा उनका तत्व दूसरा कोई नहीं जानता। फिर अर्जुन से कहा, "रुद्र भक्ति के कारण ही श्रीकृष्ण ने जगत् को व्याप्त किया है।" यहां श्रीकृष्ण के विराट का कारण भी शिव तत्व का बोध है। मैं शिव तत्व से अपरिचित हूं पर देवतंत्र का रसिया हूं। मैं भारत के मन के साथ मन मिलाते हुए ऐसे देवों के देव महादेव को नमस्कार करता रहा हूं।

शिव-शक्ति का मूर्तिमंत प्राकट्य यह संसार

प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय

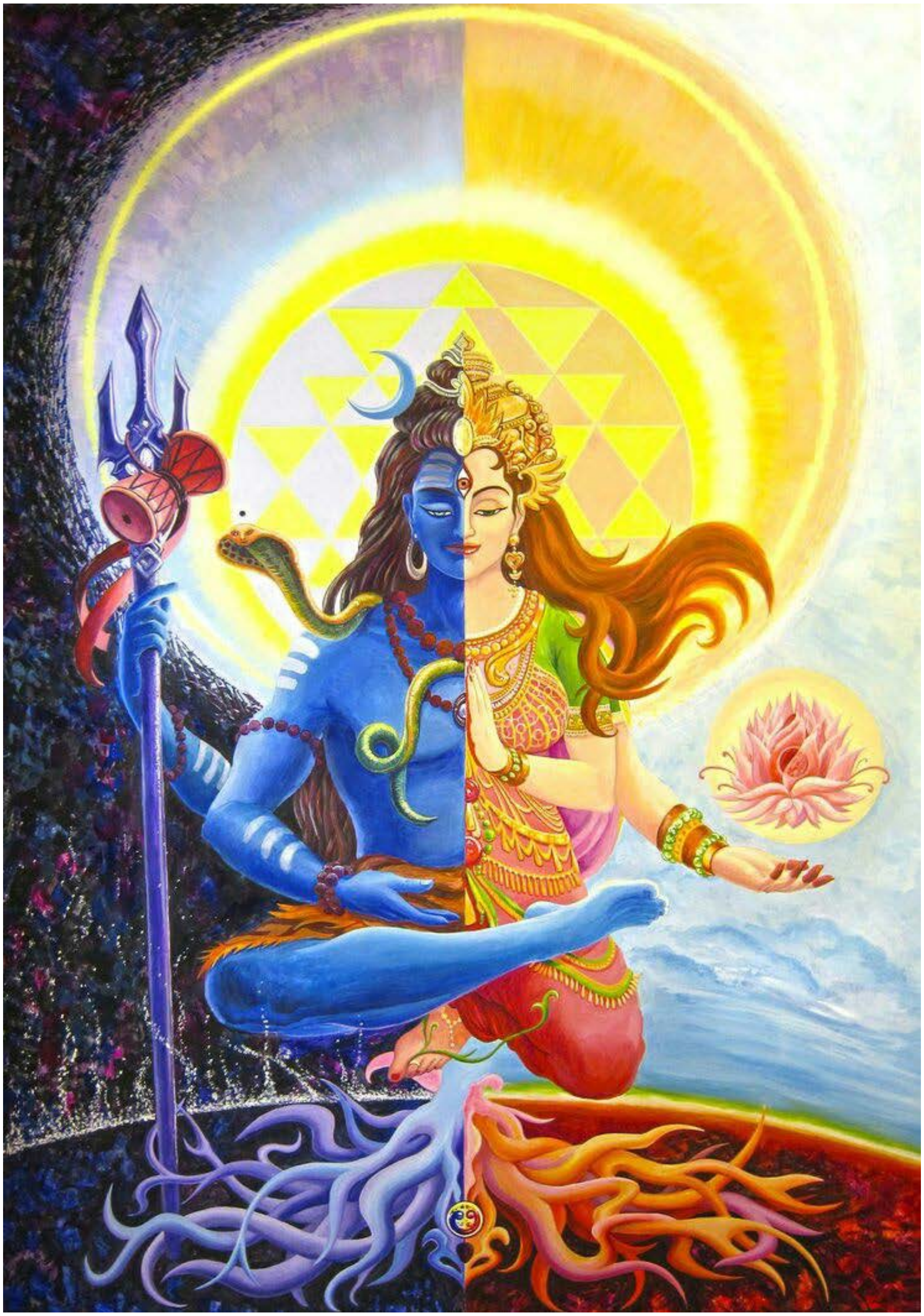

परंपरा से भारत के प्रत्येक कोने में कश्मीर शैव दर्शन का यह स्वर सदैव सुना जाता रहा है कि शिव को शक्ति के बिना शव ही मानो। शिव और शक्ति अभिन्न होकर एक दूसरे के कारण हैं। एक दूसरे के बगैर दोनों में से किसी की भी कल्पना नहीं की जा सकती। दोनों का सामरस्य एक अनूठे अद्वैत का निर्माण करता है।

(लेखक भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रतिनिधि आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में भारत अध्ययन केन्द्र के अध्यक्ष और संस्कृति पर्व के समूह सम्पादक हैं।)

शिव प्रकाश हैं और शक्ति उस प्रकाश का प्रसार यानी विमर्श है। शिव यदि प्रकाश के परम स्रोत हैं तो शक्ति उनका स्वभाव है। कश्मीर शैव दर्शन ने हजारों वर्ष पूर्व भारत की भूमि पर स्थूल जगत को मिथ्या मानने से इन्कार किया और स्पष्ट कहा कि जगत शिव की सृष्टि एवं शक्ति के विकास का साक्षात प्रकटीकरण है। यह केवल इंद्रजाल नहीं है, भ्रम नहीं है, यह शिव का अपनी शक्ति के साथ किया गया एक महानतम सत्य अभिनय है। जगत पराशक्ति के समवेत परमशिव का ही निजी स्वरूप है। इस प्रकार भारतीय विचार परंपरा ने शिव और शक्ति को अभिन्न मानते हुए इस संसार को उनकी सत्य क्रीड़ास्थली घोषित किया। इस तथ्य का भी साक्षात अनुभव किया कि शिव की सत्ता जहां इस जगत के परे भी है तो यह जगत भी शिवमय ही है।

कश्मीर शैव दर्शन जगत को शिव-शक्ति की क्रीड़ा का वास्तविक स्वरूप मानता हैं। वह जगत की उत्पत्ति या जन्म की बजाए इस सिद्धांत में विश्वास करता है कि यह संसार शिव-शक्ति का प्राकट्य है। प्राकट्य अर्थात उसका प्रकट हो जाना जो कि सदैव ही वर्तमान और विद्यमान हैं। महालय या प्रलय की अवस्था में जो अपनी शक्ति के समवेत अव्यक्त अवस्था में अन्तर्मुखी होकर महाध्यान अवस्था अथवा महाशून्य में विलीन हो जाते हैं, वही शिव अपनी स्वातंत्र्य शक्ति के उल्लास व उन्मेष में जगदाकार सृष्टि के साथ अव्यक्त से व्यक्त और अप्रकट से प्रकट और पुनः प्रकट से अप्रकट, व्यक्त से अव्यक्त होते रहते हैं।

शिव-शक्ति के इसी चैतन्य और स्वातंत्र्य रूपी साक्षात्कार के साथ कश्मीर शैव दर्शन ने हजारों वर्ष पूर्व भारत की भूमि पर स्थूल जगत को मिथ्या मानने से इन्कार किया और स्पष्ट कहा कि जगत शिव की सृष्टि एवं शक्ति के विकास का साक्षात प्रकटीकरण है। यह केवल इंद्रजाल नहीं है, कोरी कल्पना या भ्रम नहीं है, यह आदियोगी भूतभावन भगवान शिव का अपनी आदिचिद्शक्ति परांबा भगवती भवानी के साथ किया गया एक महानतम सत्य अभिनय है। यह जगत पराशक्ति के समवेत परमशिव का ही निजी स्वरूप है।

इस प्रकार भारतीय विचार परंपरा ने शिव और शक्ति को अभिन्न मानते हुए इस संसार को उनकी सत्य क्रीड़ास्थली घोषित किया। इस तथ्य का भी साक्षात अनुभव किया कि शिव की सत्ता जहां इस जगत के परे भी है तो यह जगत भी शिवमय ही है। कश्मीर शैव दर्शन के महानत आचार्य अभिनवगुप्त के प्रपितामह गुरु आचार्य सोमानन्द ने अपनी सुप्रसिद्ध कृति शिव दृष्टि में लिखा है कि-

न शिवः शक्तिरहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी।
शिवः शक्तस्तथा भावान् इच्छया कर्तुमीहते।
शक्तिशक्तिमतोर्भेदः शैवे जातु न वर्ण्यते।।

(सोमानन्दः शिवदृष्टि)

अर्थात, 'शिव एवं शक्ति अभिन्न हैं। दोनों दो होकर भी एक ही हैं एवं एक होकर भी दो हैं। किन्तु दोनों अभिन्न हैं।'

परंपरा से भारत के प्रत्येक कोने में कश्मीर शैव दर्शन का यह स्वर सदैव सुना जाता रहा है कि शिव को शक्ति के बिना शव ही मानो। शिव और शक्ति अभिन्न होकर एक दूसरे के कारण हैं। एक दूसरे के बगैर दोनों में से किसी की भी कल्पना नहीं की जा सकती। दोनों का सामरस्य एक अनूठे अद्वैत का निर्माण करता है। भारत के अनेक दर्शन और मतवाद में वैशेषिकों ने माना है कि जगत की सृष्टि परमाणुओं से हुई है। परमाणु जगत का उपादान कारण है। तो बौद्धों के मतानुसार, जगत् कर्म-नियमित क्षणिक तथा परमाणुपुञ्जस्वरूप है। सभी मत दर्शन ने अपने अपने विचार इस बारे में व्यक्त किए हैं। कश्मीर शैव दर्शन ने सृष्टि के मूल उपादान कारण रूप में शिव और शक्ति को पहचाना है। परमशिव अर्थात् परमेश्वर की निज इच्छा-शक्ति को ही सृष्टि सृजन का मूल उत्स बताया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी प्रकृति (शक्ति) और पुरूष (शिव) के कारण ही चराचर जगत की उत्पत्ति बतायी गई है।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।। (गीता-14.3)

अर्थात, मेरी महद्ब्रह्म रूपी प्रकृति यानी त्रैगुण्यमयी प्रकृति ही सभी जीवों का गर्भस्थान है। इस गर्भ में मैं चेतनरूप बीज स्थापित करता हूं। इसी जड़-चेतन के संयोग से समस्त भूतों की उत्पत्ति होती है।

परंपरा से ऋग्वेद में सर्वप्रथम शिव-शक्ति का वर्णन प्राप्त होता है। इसके एक मंत्र में शिवलिंग की संकल्पना भी स्पष्टतः दिखाई देती है। शिव का भिन्न-भिन्न नामों से उल्लेख चारों वेदों में उल्लिखित है। कहीं रुद्र, कहीं पशुपति तो कहीं त्र्यम्बक से शिव के स्वरूप का वर्णन वेदों में सर्वत्र दिखाई देता है। इस प्रकार शैव परंपरा वेदकालीन अथवा श्रुतियों के संकलन के भी पूर्व से भारत में प्रचलित होने की मान्यता है। शैव परंपरा अनेक संप्रदायों से अपना जुड़ाव रखती है जिसमें पाशुपत, लकुलीश-पाशुपत,

नन्दिकेश्वर, रसेश्वर, वीर-शैव, विशिष्टाद्वैत, शैव-सिद्धांत एवं कश्मीर शैव दर्शन आदि प्रमुख हैं। इन सभी संप्रदायों में भी अनेक मत-मतांतर हैं। कश्मीर शैव दर्शन की बात करें तो इसमें ही मुख्यतः क्रम कुल अर्थात कौल और प्रत्यभिज्ञा नाम से अलग-अलग साधना पद्धतियां हैं, यद्यपि इन सभी का आदिस्त्रोत वेद प्रणीत शैवागम हैं। कश्मीर के महान आचार्य अभिनवपाद गुप्त ने क्रम, कुल और प्रत्यभिज्ञा के मध्य समन्वय स्थापित कर प्रत्यभिज्ञा को ही त्रिक दर्शन के रूप में समन्वित किया। माधवाचार्य ने सर्वदर्शन संग्रह में प्रत्यभिज्ञा के इसी समन्वित रूप को त्रिक दर्शन माना है। त्रिक अर्थात शिव, शक्ति और दोनों के मध्य सामरस्य की त्रयी को ही त्रिक माना गया है। इस शिव, शक्ति और जीव के रूप में, परा, अपरा और परापरा शक्ति के रूप में भी अनेक विद्वानों ने व्याख्यायित किया है।

कश्मीर शैव दर्शन की आचार्य परंपरा

कश्मीर शैव दर्शन की आचार्य परंपरा में माना जाता है कि यह किसी कालखण्ड में महामुनि दुर्वासा से प्रारंभ हुई। दुर्वासा परंपरा में आचार्यों की एक लंबी श्रृंखला ने शैवमत को संपूर्ण भारत में प्रतिष्ठित किया। विगत 1500 वर्षों के इतिहास में आचार्य वसुगुप्त(825ई. के लगभग), नवीं सदी में सोमानन्द और उनके पुत्र व शिष्य उत्पलदेव और उत्पलदेव के शिष्य लक्ष्मणगुप्त का नाम परंपरा से प्राप्त होता है। लक्ष्मणगुप्त को ही महान शैव दार्शनिक साहित्यकार, नाट्यशास्त्री, तंत्रसाधक आचार्य अभिनव गुप्त का गुरु माना गया है जिनका कालखण्ड ई.सन् 950-1025 के मध्य विद्वानों ने माना है। मान्यता है कि आचार्य अभिनव गुप्त की शिष्य परंपरा में दस हजार से अधिक शिष्य थे जिनका व्याप उस कालखण्ड में कश्मीर से लेकर केरल और कन्याकुमारी तक था। आचार्य अभिनवगुप्त ने श्रीनगर से गुलमर्ग जाने वाले मार्ग पर स्थित भैरव गुफा में योगबल से सशरीर महाप्रयाण किया था।

आचार्य अभिनव गुप्त की शिष्य परंपरा में भी अनेक चर्चित आचार्य हुए जिनमें क्षेमराज, क्षेमेन्द्र, मधुराज योगी, सुभट्ट दत्त, जयकर, शोभाकर गुप्त, महेश्वरानंद आदि से होते हुए विगत शताब्दी में आचार्य लक्ष्मण जूदेव तक गतिमान रही। श्रीनगर में डल झील के किनारे आचार्य लक्ष्मण जूदेव के शैवाश्रम में भी अनेक मूर्धन्य विद्वानों ने शैव दर्शन की दीक्षा प्राप्त की जिनमें काशी के विख्यात तंत्रसाधक रामेश्वर झा प्रमुख थे जिन्होंने काशी में कश्मीर शैव दर्शन का प्रचार-प्रसार अपने योग्यतम शिष्य आचार्य कमलेश दत्त त्रिपाठी और आचार्य कमलेश झा आदि प्रमुख जीवनव्रतियों के द्वारा यह कहते हुए किया कि-

न मया क्रियते शिष्यः कृतः शिष्यो न कश्चन।
शिष्यतामिच्छते सद्यो दीयते गुरूता मया।।

- महामहोपाध्याय रामेश्वर झा

अर्थात, मैंने शिष्य नहीं बनाए, मैं कभी शिष्य नहीं बनाता। जो मेरा शिष्य बनने की इच्छा करता है उसे मैं तुरंत गुरूता प्रदान कर देता हूँ।

कश्मीर शैव दर्शन की मान्यता यही है कि परम शिव अपनी स्वतंत्र इच्छा शक्ति (परांबा भगवती भवानी) से सृष्टि करते हैं और स्वयं सृष्टि रूप में प्रकट होते हैं। वह असीम होकर भी अपनी सीमित में अभिव्यक्त करते हैं। सृष्टि करने के पीछे उनका कोई प्रयोजन नहीं होता केवल अपनी शक्ति के साथ आनन्द क्रीड़ा रूपी स्पंद का विलास ही उनका विमर्शरूप है। वह स्वात्म आनन्द में सदा विभोर रहते हुए आनन्द में ही स्पन्दमान रहते हैं और उनका यह आनन्द स्पन्दन ही विश्व का कारण बनता है। इस प्रकार सृष्टि का प्राकट्य और पुनः सृष्टि का लय अथवा प्रलय उनकी क्रीड़ा का ही रूप है जिसे शिव का उन्मेष और निमेष भी माना जाता है। इसका तात्पर्य यही है क जगत शिव में सही प्रकट होता है और शिव में ही लीन हो जाता है। कश्मीर शैव दर्शन जगत के इस प्राकट्य का कारण शिव की इच्छा-शक्ति को ही मानता है और यह भी बताता है कि जैसे किसी दर्पण में प्रतिबिम्बित चित्र वास्तविक से अभिन्न होते हुए भी भिन्न ही होता है, उसी प्रकार शिव और संसार में तात्विक एकत्व होते हुए भी अवस्थागत भेद भी होता है जिसका तात्पर्य है कि जगत शिव का प्रतिबिम्ब है और प्रतिबिम्ब सदैव बिम्ब ही नहीं है। बिम्ब वास्तविकता है किन्तु प्रतिबिम्ब आभास है। तात्विक दृष्टिकोण से जगत शिवमय है किन्तु वास्तविक सत्ता की दृष्टि से शिव की छाया अथवा क्रीड़ा है। सृष्टि की संरचना के पीछे जिन 36 मूल तत्वों का विवेचन कश्मीर शैव दर्शन में मिलता है उनके प्रथम दो आधार तत्व तो शिव तत्व और शक्ति तत्व ही हैं। शिव तत्व उनकी चित् शक्ति की महिमा के कारण परम शिव का प्रथम स्पन्दन माना गया है। शिव विश्वमय और विश्वातीत दोनों ही अवस्था के कारक हैं। शैव दर्शन संसार और बुद्धि के परे विश्वातीत अथवा विश्वोत्तीर्ण या अनुत्तर रूप परम शिव को सैतीसवें तत्व के रूप में भी देखता है जो विश्व के कारण रूप होकर विश्वमय होकर भी विश्व से परे उपस्थित रहते हैं।

यदयमनुत्तरमूर्तिर्निजेच्छयाखिलमिदं जगत्स्त्रष्टुम।
पस्पन्दे स स्पन्दः प्रथमः शिवतत्वमुच्यते तज्ज्ञैः। 1.

षट्त्रिंशत्तत्वसंदोह

विश्व के परे अर्थात अनुत्तररूपी परमशिव अपनी इच्छा-शक्ति से जब इस संसार की सृष्टि के लिए स्पन्दन

करते हैं अर्थात् क्रियान्मुख होते हैं तो उनका पहला स्पन्दन अर्थात सृष्टि की प्रथम अभिव्यक्ति को ही विद्वान शिव तत्व कहते हैं। यह शिवतत्व परमशिव का प्रथम आदि प्रकट प्रकाश रूप है। उनके इस प्राकट्य का कारण आदि स्वातंत्र्य शक्ति है जो उनके साथ अभेद एकात्म रूप में रहती हैं।

इच्छा सैव स्वच्छा संततसमवायिनी सती शक्तिः।
सचराचरस्य जगतो बीजं निखिलस्य निजनीलीनस्य। 2.

षट्त्रिंशत्तत्वसंदोह

शिव की जो इच्छाशक्ति है, वह उनके साथ समवाय यानी अभिन्न रूप से उनमें समायी हुई हैं। वह शुद्ध रूपा और सती रूपा है। वह शक्ति ही उन शिव का स्वभाव है। चर-अचर, चेतन-अचेतन अर्थात जड़ और चेतन का बीज वही आदि शुद्ध शक्ति हैं जो शिव के रूप में तादात्म्यभाव से रहती हैं अर्थात सदा उन्हीं में बसी हुई उनकी होकर रहती हैं। यह शक्ति ही शिव का अहं-विमर्श है, उनका स्वभाव है। उनकी आनन्द-शक्ति है। उनका क्रियारूप है। तात्पर्य यही है कि बिना शक्ति के शिव अभिव्यक्त ही नहीं हो सकते। इसलिए दोनों एक दूसरे से अलग न होकर एकरूप, एकसमान और तत्वतः एक ही हैं। इनमें अन्तर केवल काल्पनिक है। अर्धनारीश्वर उनके रूप के प्रति केवल संकेत है किन्तु वास्तविकता में शिव सम्पूर्ण रूप से शक्ति हैं और शक्ति सम्पूर्ण रूप से शिव है। इनमें अन्तर किया ही नहीं जा सकता। केवल बुद्धि को प्राथमिक स्तर पर समझाने के लिए ही दोनों का रूप पृथक पृथक विद्वान बताते हैं, अन्यथा तो दोनों एक ही हैं। शिव की इच्छाशक्ति ही जगत के रूप में प्रकट होती है और जगत में शिव और शक्ति का समवेत महाविलास तबतक चलता रहता है जबतक कि पुनः दोनों अपनी मूल एक्यावस्था अर्थात ध्यानावस्था को प्राप्त नहीं कर लेते।

षट्त्रिंशत्तत्वसंदोह में कहा गया है कि-

स्वेच्छाशक्त्युद्गीर्ण जगदात्मतया समाच्छाद्य।
निवसंस एव निखिलानुग्रहनिरतः सदाशिवोअभिहितः।। 3.

षट्त्रिंशत्तत्वसंदोह

अपने स्वरूप में ऐक्यभाव से स्थित जगत को इच्छा-शक्ति के रूप में अभिव्यक्त कर वह परमशिव दूसरा रूप धारण करते हैं। अब वह सदाशिव रूप में पुकारे जाते हैं, जो संसार में शक्तिस्वरूप में स्थित रहकर सम्पूर्ण जगत को अपना अनुग्रह, अपनी कृपा प्रदान करते हैं।

इस प्रकार सदाशिव अवस्था शिव और शक्ति की आन्तरिक सम्बन्ध की अवस्था है। उनका रूप अब दृश्यमान होने लगता है और यही दृश्यमान अवस्था को शैवदर्शन ने ईश्वर तत्व के रूप में देखा है। इस ईश्वर के उदय के साथ ही विश्व का उदय होता है, ईश्वर विश्व से परे न होकर इस विश्व में विश्वात्मिका रूप में रहते हैं। जैसे कलाकार के मन में जो चित्र रहता है, जब तक वह मन में है,इच्छा में है तबतक तो अमूर्त है निराकार है किन्तु जैसे ही वह चित्र को अपनी इच्छा शक्ति से क्रियारूप में बदलता है तो उसकी कला प्रकट हो जाती है, कुछ वैसे ही सदाशिव तत्व से ईश्वर के उदय और ईश्वर के उदय से विश्व का बाह्य रूप का दिग्दर्शन होने लगता है।

वस्तुतः परमशिव और उनकी इच्छाशक्ति के द्वारा संसार के प्राकट्य को शैव साधकों ने भगवान शिव की क्रीड़ा कहा है, उसे ही वैष्णव परंपरा ने लक्ष्मी-नारायण की लीला कहा है। सदाशिव का स्वरूप ही ईश्वर अर्थात वैष्णव परंपरा के नारायण रूप से साम्यता रखता है जिसमें से ब्रह्मांड, संसार, पृथ्वी, चर-अचर सृष्टि, समस्त जीव जगत और नर-नारी रूप का जन्म होता है। भारतीय सनातन परंपरा इसे ही शिव-शक्ति अथवा लक्ष्मी नारायण की अहेतुकी कृपा मानती है जिसमें जीव को अपने परमात्मा के दर्शन के लिए उन्हीं के त्रिक रूप इच्छा रूप, क्रिया रूप और ज्ञान रूप के मार्ग पर चलते हुए जीवन का रहस्य जानने का अवसर मिलता है। जब तक जीव इस रहस्य को जानकर सब सुख-दुख सहते हुए जीवन यात्रा से पार जाने का मर्म समझ नहीं लेता तब तक उसे सुख और दुख के झूले अपने आवेगों में हंसाते और रुलाते हैं। किन्तु जब एक बार शिव-शक्ति के इस सामरस्य को समझकर जीव अपने भीतर उपस्थित गुण रूपी परमात्मा को देखकर स्वयं को अभिव्यक्त करने का मार्ग खोज लेता है और प्रत्येक गतिविधि में उसी परमात्मा के परम ऐश्वर्य की अनुभूति करने लगता है तो वही दिन उसकी जिन्दगी का वह प्रकट क्षण हो जाता है, जिसमें उसे स्व का साक्षात्कार हो जाता है और उसकी जन्म जन्मांतर की यात्रा से मुक्ति की राह प्रशस्त होने लगती है। हमारी परंपरा ने, हमारे सम्पूर्ण शास्त्रों ने एक स्वर से यही कहा और माना है कि -

सोई जानइ जेहि देहु जनाई, जानत तुमहि तुमहि होई जाई।।
कृतो नेको यत्नो न चकिमपिदृष्टं नवफलं
गतोभूयान् कालः सुकृतबल लब्धस्य वपुषः।
इदानीनते शम्भो! शरणमुपयातः पुनरहं
शिवः शान्तः स्वच्छो गलित भवबाधोऽस्मि सुखितः।।

अनेक यत्न किए, कितने ही प्रयास किए, जन्म पर जन्म मिले, पर कुछ नया फल देखने में नहीं आया। अपने अच्छे कार्यों से बार-बार प्राप्त इस मनुष्य शरीर में बहुत समय निरर्थक बीत गया। हे शम्भु! अब मै फिर तुम्हारी शरण में आ रहा हूँ। इस लिए संसार की बाधा से रहित शान्त, स्वच्छ शिव स्वरूप होकर मैं सुखी हूँ।

कथा ही नही महाविज्ञान और शिव-शक्ति का योग है

शिव-पार्वती विवाह

आचार्य लालमणि तिवारी

भगवान शिव और माता पार्वती के विवाह की कथा केवल एक कथा भर नहीं है। वस्तुतः यह सृष्टि संचालन के लिए उत्तरदायी शिव-शक्ति सम्मिलन है। इसीलिए कथानक के रूप में गोस्वामी तुलसीदास ने परमब्रह्म और महाशक्ति अर्थात् भगवान राम और मात सीता की कथा को लिखते समय बार-बार माता पार्वती और माता सीता को जगत जननी के रूप में उल्लिखित किया है।

“शिवजी ने मदन को भस्म किया, तदुपरान्त उमा की तपस्या से सुषुम्णा नाड़ी द्वारा योग की साधना से शिव और पार्वती का विवाह हुआ, अर्थात् चिदात्मिका शक्ति जो अधोमुखी थी, वह अन्तर्मुखी हो कर सहस्रारदल में स्थित पर-बिन्दु शिव से संयुक्त हो जाती है, फिर विषयों से उसे कोई भय नहीं रहता।”

महाकवि कालिदास के महाकाव्य 'कुमारसम्भवम्' भी एक बार तो शिव-पार्वती की परिणय कथा ही जान पड़ती है, किन्तु गहराई में डूबें , तो इस परिणय कथा के ऊपर से एक-एक कर सब पर्दे हटते हैं, और कुमार कार्तिकेय के जन्म को लेकर बहुत सी नई बातें सामने लाई जाती हैं। सनातन के आदि साहित्य से लेकर कालिदास तक ने शिव और उनकी कलाओं पर बहुत कुछ लिखा है। इस सृष्टि में शिव, शिव का परिवार और शिव की क्रियायें आदिकाल से ही लेखन का विषय रही हैं। शिव के विवाह को लेकर करोड़ों कथाएं गायी जाती हैं। आधुनिक युग में श्रीरामचरितमानस का आरम्भ ही गोस्वामी जी ने शिव शक्ति संधान और शिव विवाह की कथा से किया है। आधुनिक साहित्य का बासुदवशरण अग्रवाल ने शिव विवाह की कथाओं को लेकर गहन विवेचन प्रस्तुत किया है। डॉ.वासुदेवशरण अग्रवाल के आलेख का एक अंश यहाँ उद्धत किया जा रहा है। इसे पढते हुए तो यह लगता है कि महाशिवरात्रि का दिन शिव की यौगिक क्रियाओं का सिद्धिदिवस है । इस दिन का सीधा सम्बंध ही योग से है । इस आलेख को पढ कर शिव और पार्वती का स्वरूप समझने में सहायता मिलती है , और तब इस महाशिवरात्रि के अर्थ को समझने की कुञ्जी हमारे हाथ लगती हैं। डॉ.वासुदेशरण अग्रवाल लिखते हैं -

पार्वती सुषुम्णा नाड़ी का नाम है। मेरुदंड हिमालय है, इसीके भीतर सुषुम्णा नाड़ी है। इस मेरुदंड में छह चक्र और तैंतीस पर्व या अस्थिपोर हैं । ये पोर एक-दूसरे से सटे रहते हैं । मेरु

(लेखक भारतीय शास्त्र परम्परा के आचार्य और गीता प्रेस गोरखपुर के व्यवस्था प्रमुख हैं।)

ही पर्वत है (पर्वाणि सन्त्यस्य)। उस पर्वत के भीतर रहने वाली सुषुम्णा पर्वतराज की पुत्री पार्वती है। अस्थिपोरों के भीतर एक छिद्र है, पर्वों के मिलने से वह रन्ध्र ,दीर्घ नलिका के आकार का हो जाता है।इसी के भीतर सुषुम्णा नाड़ी है।

वह नाड़ी मस्तिष्क से होती हुई पृष्ठ-वंश में अवस्यूत हो कर सबसे नीचे के मूलाधार चक्र तक आती है।पर्वास्थि के भीतर पहले श्वेत ,फिर विभूति वर्ण का भूरा मज्जामय पदार्थ रहता है जो मस्तिष्क के कोशों में भी पाया जाता है।इसी मज्जामय सुषुम्णा के भीतर एक सूक्ष्म विवर है जो नीचे से ऊपर तक आयत रहता है। सुषुम्णा के बाईं ओर इडा और दक्षिण ओर पिंगला नाम की नाड़ियाँ हैं, जो सुषुम्णा से सम्बद्ध रहती हैं और सहस्र जाल से फैलती हुई अंत में कपालस्थ आज्ञाचक्र में सुषुम्णा से मिल जाती है। भौतिकपक्ष में इस प्राण के आधार ये सब नाड़ी-जाल और षट्चक्र है। नाड़ियों की सूक्ष्मता की तो कोई सीमा नहीं है।

उनकी संख्या योगशास्त्र के अनुसार 72000 है। वस्तुतः आधुनिक शरीरशास्त्री के लिये भी समस्त नाड़ी-संख्या का निर्धारण कठिन है। इन सबमें मुख्य सुषुम्णा ही है। स्थूल शरीरविज्ञान जीवनतत्व के भौतिक आधार का ही परिचय पा सका है, उसका भोगायतन (फिजियोलॉजिकल) रूप प्रयोगसाध्य है।परन्तु योगविद्या मानसिक पक्ष में भी प्राण की गति का निर्देश और सूक्ष्म परिचय कराती है। इसीलिये भौतिक प्रयोग से जिस वस्तु का ज्ञान नहीं हो पाता, ध्यान में उन्हीं शारीरिक रहस्यों का मानसिक क्रियाओं के साथ प्रत्यक्ष हो जाता है। तंत्रग्रंथों में इसके दो प्रकार से वर्णन मिलते हैं। कहीं तो भोगायतन पक्ष में जीवन तत्व का अधिष्ठान समझाने के लिये सुषुम्णा आदि संज्ञाओं से काम लिया जाता है और कहीं उस वर्णन को आध्यात्मिक रूप शिव, पार्वती, कुमार, प्रमथ आदि संज्ञाएँ कल्पित करके योग-प्रत्यक्ष को शब्दों द्वारा प्रगट किया जाता है। षट्चक्र तो प्रायः सभी जानते हैं - मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र। जब योगी पाँच चक्रों को सिद्ध कर लेता है, तब उसे कामबाधा नहीं सताती। शिव के लिये कालिदास ने कहा है- ' अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात् ' अर्थात् मदन के निग्रह के कारण रूप या सौन्दर्य उनके चित्त को हर नहीं सकता। पहले शिव ने मदन को भस्म कर डाला (भस्मावशेषं मदनं चकार) ,तभी वे पार्वती के साथ विवाह करके षडानन कुमार को जन्म देते हैं। आज्ञाचक्र से ऊपर सहस्त्रदलकमल है, जहाँ पर साक्षात् शिव निवास करते हैं। कुमार का जन्म शिव के स्कन्दित तेज से होता है। यह तेज पार्वतीरुपी सुषुम्णा में निक्षिप्त हो कर क्रमशः छहों चक्रों के द्वारा पुष्ट और लालित होता हुआ स्कन्द को जन्म देता है, जो इसी कारण छः माताओं के पुत्र या षाण्मातुर कहे गये हैं। यही स्कन्द की परिभाषा है। हुतवह अर्थात् अग्नि नामक सुषुम्णा के मुख सूर्य से भी अधिक प्रकाशित शिव का तेज ही स्कन्द है। कोषों में स्कन्द की पत्नी का नाम देवसेना है। इन्द्रियों की सात्विक और तामसिक वृत्तियों का द्वन्द्व देवासुर- संग्राम है। जब सतोगुणी इन्द्रियाँ काम से हारने लगती हैं, तब वे समाधि में बैठे हुए शिव से प्रार्थना करती हैं कि वे उन्हें एक सेनापति दें। देवों ने भी यही कहा है -

तदिच्छामो विभो स्रष्टुं सेनान्यं तस्य शान्तये।

(कुमारसम्भवम् 2.51)

शिवजी ने मदन को भस्म किया, तदुपरान्त उमा की तपस्या से सुषुम्णा नाड़ी द्वारा योग की साधना से शिव और पार्वती का विवाह हुआ, अर्थात् चिदात्मिका शक्ति जो अधोमुखी थी, वह अन्तर्मुखी हो कर सहस्त्रारदल में स्थित पर-बिन्दु शिव से संयुक्त हो जाती है, फिर विषयों से उसे कोई भय नहीं रहता ।सहस्त्रारदल में जो शिव हैं, वे ही अक्षरतत्व हैं। वही समस्त ब्रह्माण्ड की चित्-शक्ति हैं। मूलाधार चक्र में शक्तिपीठ है जहाँ व्यक्ति की शक्ति निवास करती है। शक्ति के तीन कोण कहे गये हैं -इच्छा, ज्ञान और क्रिया। इन्हीं का नाम त्रिपुर है।इनके मध्य में बसने वाली शक्ति त्रिपुरसुंदरी कही गई है। इसी त्रिपुर में कुंडल मारकर शान्त बसने वाली शक्ति की शब्दगत कल्पना सर्पिणी की है। इसीसे शिव के शरीर में भुजंग लिपटे रहते हैं, और शिव को अहिवलय धारण करने वाला कहा गया है। कालिदास ने कहा है -

हित्वा तस्मिन् भुजगवलयं शम्भुना दत्तहस्ता ।
क्रीडाशैले यदि च विचरेत् पादचारेण गौरी ।।

मूलाधार में यह सर्पिणी शिवरूप ज्योति के चारों ओर ही लिपटी रहती है, परन्तु आज्ञाचक्र में पहुँच कर जब शिव- पार्वती का संयोग हो जाता है, तब यह कुंडलिनी पूरी रह खुल जाती है, मानो शिवजी ने अपने सर्पवलय का त्याग कर दिया हो। जहाँ तक शरीरशास्त्र से प्रत्यक्ष करने का विषय है, वहाँ तक इस प्रकार त्रिकोणात्मिका शक्ति के रूप को शल्यशास्त्र के द्वारा हम नहीं देख सकते। मानस-प्रत्यक्ष से सम्बंध रखने वाली वस्तु यंत्र द्वारा कैसे जानी जा सकती है?इसका दर्शन योगपक्ष में ध्यान द्वारा ही हो सकता है। ज्योति या तेजः स्फुलिंग के आकार का शिवलिंग इसीका प्रतीक है। शिव इसी शक्ति के कोण या त्रिपुर की विजय करते हैं, इससे उनकी संज्ञा त्रिपुर- विजयी है।

डॉ.वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस महत्वपूर्ण आलेख के सबसे अंत में लिखा है - आज्ञाचक्र में प्रणव' 'का प्रत्यक्ष होता है।वहाँ ही चन्द्राकार ज्योति का दर्शन होता है।यहीं सूर्य, चन्द्र और अग्नि के तीन बिन्दु हैं, जिनके नामान्तर शिव, विष्णु और ब्रह्मा तंत्रग्रंथों में प्रसिद्ध हैं। यहाँ साधक को चन्द्र की किरणों से टपकने वाली सुधा के आस्वाद का आनंद मिलता है। इस सम्बंध में एक आलेख में मुरलीधर ने भी डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल की इस विवेचना को स्वीकार करते हुए शिव विवाह कथा की वैज्ञानिक अवधारणा को प्रस्तुत किया है।

द्वादश ज्योतिर्लिंग

संजय राय 'शेरपुरिया'

जो भी मनुष्य प्रतिदिन प्रातः काल उठकर इन ज्योतिर्लिंगों से सम्बन्धित श्लोकों का पाठ करता है, अर्थात् श्लोकों को पढ़ता हुआ, शिवलिंगों का ध्यान करता है, उसके सात जन्मों तक के पाप नष्ट हो जाते हैं। जिस कामना की पूर्ति के लिए मनुष्य नित्य इन नामों का पाठ करता है, शीघ्र ही उस फल की प्राप्ति हो जाती है।

लेखक सुप्रसिद्ध समाजसेवी, उद्यमी एवं सनातन चिंतक हैं।

ज्योतिर्लिंग और शिवलिंग में अंतर है। शिवपुराण की एक कथा के अनुसार, एकबार सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और जगतपालक विष्णु में विवाद हुआ कि उनमें श्रेष्ठ कौन है, तब उन दोनों का भ्रम समाप्त करने के लिए शिव एक महान ज्योति स्तंभ के रूप में प्रकट हुए, जिसकी थाह ये दोनों देव नहीं पा सके। इसी को ज्योतिर्लिंग कहा जाता है। वहीं लिंग का अर्थ है प्रतीक यानी शिव के ज्योति रुप में प्रकट होने और सृष्टि के निर्माण का प्रतीक। ज्योतिर्लिंग सदैव स्वयंभू होते हैं जबकि शिवलिंग मानव द्वारा स्थापित और स्वयंभू दोनों हो सकते है। जो भी मनुष्य प्रतिदिन प्रातः काल उठकर इन ज्योतिर्लिंगों से सम्बन्धित श्लोकों का पाठ करता है, अर्थात् उपर्युक्त श्लोकों को पढ़ता हुआ, शिवलिंगों का ध्यान करता है, उसके सात जन्मों तक के पाप नष्ट हो जाते हैं। जिस कामना की पूर्ति के लिए मनुष्य नित्य इन नामों का पाठ करता है, शीघ्र ही उस फल की प्राप्ति हो जाती है। इन लिंगो के दर्शन मात्र से सभी पापों का क्षय हो जाता है, यही भगवान शंकर की विशेषता है।

1. सोमनाथ

सोमनाथ मन्दिर जिसे सोमनाथ ज्योतिर्लिंग भी कहा जाता है, गुजरात (सौराष्ट्र) के काठियावाड़ क्षेत्र के अन्तर्गत प्रभास में विराजमान हैं। इसी क्षेत्र में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने यदु वंश का संहार कराने के बाद अपनी नर लीला समाप्त कर ली थी। 'जरा' नामक व्याध (शिकारी) ने अपने बाणों से उनके चरणों (पैर) को बींध डाला था।

शिव पुराण के अनुसार द्वादश ज्योतिर्लिंग में सोमनाथ की गणना प्रथम है। इनके आविर्भाव का प्रकरण प्रजापति दक्ष और चन्द्रमा के साथ जुड़ा है। जब प्रजापति दक्ष ने अपनी अश्विनी आदि सभी सत्ताइस पुत्रियों का विवाह चन्द्रमा के साथ कर दिया, तो वे बहुत प्रसन्न हुए। पत्नी के रूप में दक्ष कन्याओं को प्राप्त कर चन्द्रमा बहुत शोभित हुए और दक्षकन्याएँ भी अपने स्वामी के रूप में चन्द्रमा को प्राप्त कर शोभायमान हो उठी। चन्द्रमा की उन सत्ताइस पत्नियों में रोहिणी उन्हें अतिशय प्रिय थी, जिसको वे विशेष आदर तथा प्रेम करते थे। उनका इतना प्रेम अन्य पत्नियों से नहीं था। चन्द्रमा की उदासीनता और उपेक्षा का देखकर रोहिणी की अपेक्षा शेष स्त्रियाँ बहुत दुःखी हुई। वे सभी स्त्रियाँ अपने पिता दक्ष की शरण में गयीं और उनसे अपने कष्टों का वर्णन किया। अपनी पुत्रियों की व्यथा और चन्द्रमा के दुर्व्यवहार को सुनकर दक्ष भी बड़े दुःखी हुए। उन्होंने चन्द्रमा से भेंट की और शान्तिपूर्वक कहा- 'कलानिधे! तुमने निर्मल व पवित्र कुल में जन्म लिया है, फिर भी तुम अपनी पत्नियों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार करते हो। तुम्हारे आश्रय में रहने वाली जितनी भी स्त्रियाँ हैं, उनके प्रति तुम्हारे मन में प्रेम कम और अधिक, ऐसा सौतेला व्यवहार क्यों है? तुम किसी को अधिक प्यार करते हो और किसी को कम प्यार देते हो, ऐसा क्यों करते हो? अब तक जो व्यवहार किया है, वह ठीक नहीं है, फिर अब आगे ऐसा दुर्व्यवहार तुम्हें नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति आत्मीयजनों के साथ विषमतापूर्ण व्यवहार करता है, उसे नर्क में जाना पड़ता है।' इस प्रकार प्रजापति दक्ष ने अपने दामाद चन्द्रमा को प्रेमपूर्वक समझाया और ऐसा सोच लिया कि चन्द्रमा में सुधार हो जाएगा।

शिव महापुराण के कोटिरुद्र संहिता के चौदहवें अध्याय में लिखा है-

विमले च कुले त्वं हि समुत्पन्नः कलानिधे।
आश्रितेषु च सर्वेषु न्यूनाधिक्यं कथं तव।।
कृतं चेतत्कृतं तच्च् न कर्त्तव्यं त्वया पुनः।
वर्तनं विषमत्वेन नरकप्रदमीरितम्।।

प्रबल भावी के कारण विवश चन्द्रमा ने अपने ससुर प्रजापति दक्ष की बात नहीं मानी। रोहिणी के प्रति अतिशय आसक्ति के कारण उन्होंने अपने कर्त्तव्य की अवहेलना की तथा अपनी अन्य पत्नियों का कुछ भी ख्याल नहीं रखा और उन सभी से उदासीन रहे। दुबारा समाचार प्राप्त कर प्रजापति दक्ष बड़े दुःखी हुए। वे पुनः चन्द्रमा के पास आकर उन्हें उत्तम नीति के द्वारा समझने लगे। दक्ष ने चन्द्रमा से न्यायोचित बर्ताव करने की प्रार्थना की। बार-बार आग्रह करने पर भी चन्द्रमा ने अवहेलनापूर्वक जब दक्ष की बात नहीं मानी, तब उन्होंने शाप दे दिया। दक्ष ने कहा कि मेरे आग्रह करने पर भी तुमने मेरी अवज्ञा की है, इसलिए तुम्हें क्षयरोग हो जाय-

श्रयतां चन्द्र यत्पूर्व प्रार्थितो बहुधा मया।
न मानितं त्वया यस्मात्तस्मात्त्वं च क्षयी भव।।

दक्ष द्वारा शाप देने के साथ ही क्षण भर में चन्द्रमा क्षय रोग से ग्रसित हो गये। उनके क्षीण होते ही सर्वत्र हाहाकार मच गया। सभी देवगण तथा ऋषिगण भी चिंतित हो गये। परेशान चन्द्रमा ने अपनी अस्वस्थता तथा उसके कारणों की सूचना इन्द्र आदि देवताओं तथा ऋषियों को दी। उसके बाद उनकी सहायता के लिए इन्द्र आदि देवता तथा वसिष्ठ आदि ऋषिगण ब्रह्माजी की शरण में गये। ब्रह्मा जी ने उनसे कहा कि जो घटना हो गई है, उसे तो भुगतना ही है, क्योंकि दक्ष के निश्चय को पलटा नहीं जा सकता। उसके बाद ब्रह्माजी ने उन देवताओं को एक उत्तम उपाय बताया।

ब्रह्माजी ने कहा कि चन्द्रमा देवताओं के साथ कल्याणकारक शुभ प्रभास क्षेत्र में चले जायें। वहाँ पर विधिपूर्वक शुभ मृत्युंजय-मंत्र का अनुष्ठान करते हुए श्रद्धापूर्वक भगवान शिव की आराधना करें। अपने सामने शिवलिंग की स्थापना करके प्रतिदिन कठिन तपस्या करें। इनकी आराधना और तपस्या से जब भगवान भोलेनाथ प्रसन्न हो जाएँगे, तो वे इन्हें क्षय रोग से मुक्त कर देगें। पितामह ब्रह्माजी की आज्ञा को स्वीकार कर देवताओं और ऋषियों के संरक्षण में चन्द्रमा देवमण्डल सहित प्रभास क्षेत्र में पहुँच गये।

वहाँ चन्द्रदेव ने मृत्युंजय भगवान की अर्चना-वन्दना और अनुष्ठान प्रारम्भ किया। वे मृत्युंजय-मंत्र का जप तथा भगवान शिव की उपासना में तल्लीन हो गये। ब्रह्मा की ही आज्ञा के अनुसार चन्द्रमा ने छः महीने तक निरन्तर तपस्या की और वृषभ ध्वज का पूजन किया। दस करोड़ मृत्यंजय-मंत्र का जप तथा ध्यान करते हुए चन्द्रमा स्थिरचित्त से वहाँ निरन्तर खड़े रहे। उनकी उत्कट तपस्या से भक्तवत्सल भगवान शंकर प्रसन्न हो गये। उन्होंने चन्द्रमा से कहा- चन्द्रदेव ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम जिसके लिए यह कठोर तप कर रहे हो, उस अपनी अभिलाषा को बताओ। मै तुम्हारी इच्छा के अनुसार तुम्हें उत्तम वर प्रदान करूँगा।' चन्द्रमा ने प्रार्थना करते हुए विनयपूर्वक कहा- 'देवेश्वर ! आप मेरे सब अपराधों को क्षमा करें और मेरे शरीर के इस क्षयरोग को दूर कर दें।'

भगवान शिव ने कहा - चन्द्रदेव ! तुम्हारी कल प्रतिदिन एक पक्ष में क्षीण हुआ करेगी, जबकि दूसरे पक्ष में प्रतिदिन वह निरन्तर बढ़ती रहेगी। इस प्रकार तुम स्वस्थ और लोक-सम्मान के योग्य ही जाओगे। भगवान शिव का कृपा-प्रसाद प्राप्त कर चन्द्रदेव बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने भक्तिभावपूर्वक शंकर की स्तुति की। ऐसी स्थिति में निराकार शिव उनकी दृढ़ भक्ति को देखकर साकार लिंग रूप में प्रकट हो गये तथा प्रभास क्षेत्र के महत्त्व को बढाने हेतु देवताओं के सम्मान तथा चन्द्रमा के यश का विस्तार करने के लिए स्वयं 'सोमेश्वर' कहलाने लगे। चन्द्रमा के नाम पर सोमनाथ बने भगवान शिव संसार में 'सोमनाथ' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

प्राचीन भारतीय इतिहास और आधुनिक भारत के इतिहास में भी सोमनाथ मन्दिर को सन् 1024 में महमूद गजनवी ने भ्रष्ट कर दिया था। मूर्ति भंजक होने के कारण तथा सोने-चाँदी को लूटने के लिए उसने मन्दिर में तोड़-फोड़ की थी। मन्दिर के हीरे-जवाहरातों को लूट कर वह अपने देश गजनी लेकर चला गया। उक्त सोमनाथ मन्दिर का भग्नावशेष आज भी समुद्र के किनारे विद्यमान है। इतिहास के अनुसार बताया जाता है कि जब महमूद गजनवी उस शिवलिंग को नहीं तोड़ पाया, तब उसने उसके अगल-बगल में भीषण आग लगवा दी। सोमनाथ मन्दिर में नीलमणि के छप्पन खम्भे लगे हुए थे। उन खम्भों में हीरे-मोती तथा विविध प्रकार के रत्न जड़े हुए थे। उन बहुमूल्य रत्नों को लुटेरों ने लूट लिया और मन्दिर को भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

पुनः प्रतिष्ठा

महमूद गजनवी के मन्दिर लूटने के बाद राजा भीमदेव ने पुनः उसकी प्रतिष्ठा की। सन् 1093 में सिद्धराज जयसिंह ने भी मन्दिर की प्रतिष्ठा और उसके पवित्रीकरण में भरपूर सहयोग किया। 1168 में विजयेश्वर कुमारपाल ने जैनाचार्य हेमचन्द्र सरि के साथ सोमनाथ की यात्रा की थी। उन्होंने भी मन्दिर का बहुत कुछ सुधार करवाया था। इसी प्रकार सौराष्ट्र के राजा खंगार ने भी सोमनाथ-मन्दिर का सौन्दर्यीकरण कराया था। उसके बाद भी मुसलमानों ने बहुत दुराचार किया और मन्दिर को नष्ट-भ्रष्ट करते रहे। अलाऊद्दीन खिल्जी ने सन् 1297 ई. में पुनः सोमनाथ-मन्दिर का ध्वंस किया। उसके सेनापति नुसरत ख़ाँ ने जी-भर मन्दिर को लूटा। सन् 1395 ई. में गुजरात का सुल्तान मुजफ्फरशाह भी मन्दिर का विध्वंस करने में जुट गया। अपने पितामह के पदचिह्नों पर चलते हुए अहमदशाह ने पुनः सन् 1413 ई. में सोमनाथ-मन्दिर को तोड़ डाला। प्राचीन स्थापत्यकला जो उस मन्दिर में दृष्टिगत होती थी, उन सबको उसने तहस-नहस कर डाला।

भारतीय स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद राष्ट्र के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने देश के स्वाभिमान को जाग्रत करते हुए पुनः सोमनाथ मन्दिर का भव्य निर्माण कराया। आज पुनः भारतीय-संस्कृति और सनातन-धर्म की ध्वजा के रूप में सोमेश्वर ज्योतिर्लिंग 'सोमनाथ मन्दिर' के रूप में शोभायमान है। सोमनाथ का मूल मन्दिर जो बार-बार नष्ट किया गया था, वह आज भी अपने मूलस्थान समुद्र के किनारे ही है। स्वाधीन भारत के प्रथम गृहमन्त्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने यहाँ भव्यमन्दिर का निर्माण कराया था। सोमनाथ के मूल मन्दिर से कुछ ही दूरी पर अहल्याबाई द्वारा बनवाया गया सोमनाथ का मन्दिर है।

2. काशी विश्वनाथ

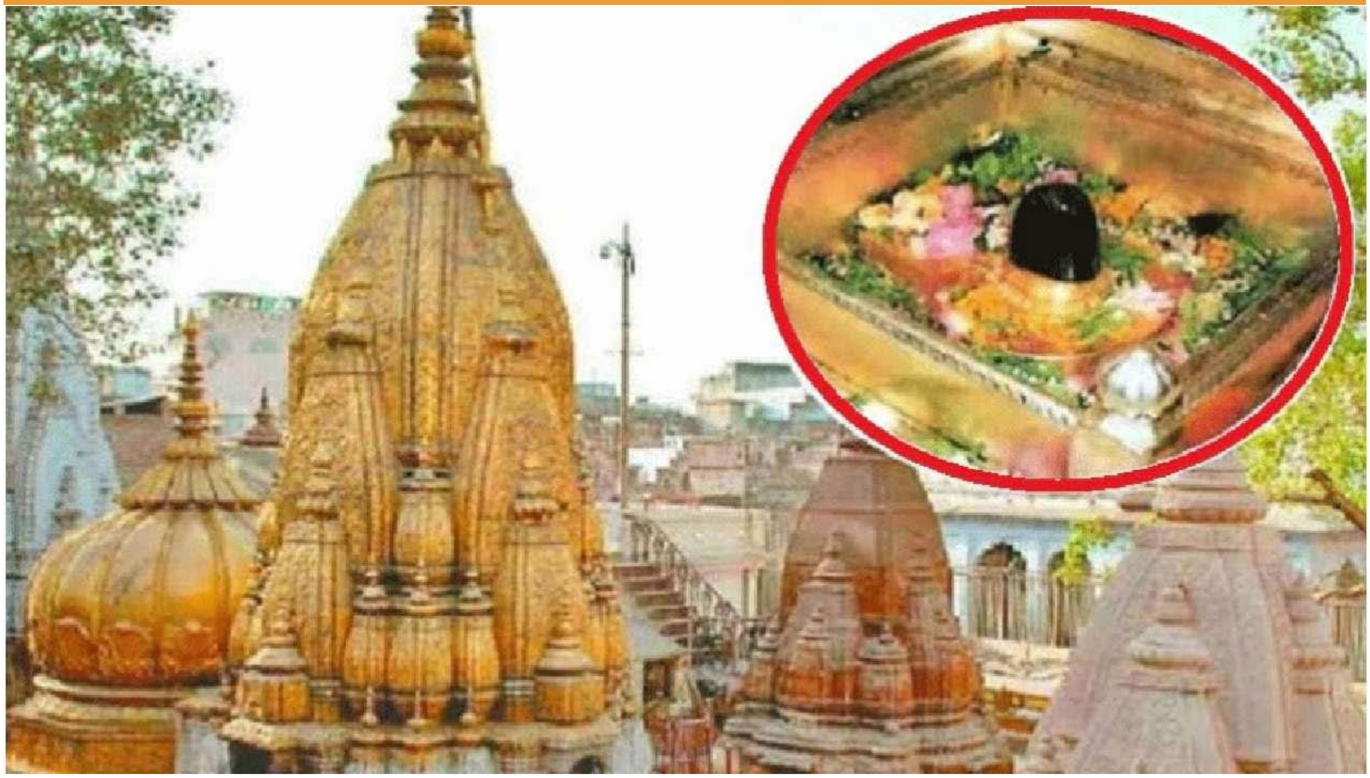

श्री विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंग उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद के काशी नगर में अवस्थित है। कहते हैं, काशी तीनों लोकों में न्यारी नगरी है, जो भगवान शिव के त्रिशूल पर विराजती है। इसे आनन्दवन, आनन्दकानन, अविमुक्त क्षेत्र तथा काशी आदि अनेक नामों से स्मरण किया गया है। काशी साक्षात सर्वतीर्थमयी, सर्वसन्तापहरिणी तथा मुक्तिदायिनी नगरी है। निराकर महेश्वर ही यहाँ भोलानाथ श्री विश्वनाथ के रूप में साक्षात अवस्थित हैं। इस काशी क्षेत्र में स्थित श्री दशाश्वमेध, श्री लोलार्क, श्री बिन्दुमाधव, श्री केशव और श्री मणिकर्णिक। ये पाँच प्रमुख तीर्थ हैं, जिनके कारण इसे 'अविमुक्त क्षेत्र' कहा जाता है। काशी के उत्तर में ओंकारखण्ड, दक्षिण में केदारखण्ड और मध्य में विश्वेश्वरखण्ड में ही बाबा विश्वनाथ का प्रसिद्ध है। ऐसा सुना जाता है कि मन्दिर की पुनः स्थापना आदि जगत गुरु शंकरचार्य जी ने अपने हाथों से की थी। श्री विश्वनाथ मन्दिर को मुगल बादशाह औरंगजेब ने नष्ट करके उस स्थान पर मस्जिद बनवा दी थी, जो आज भी विद्यमान है। इस मस्जिद के परिसर को ही 'ज्ञानवाणी' कहा जाता है।

प्राचीन शिवलिंग आज भी 'ज्ञानवापी' कहा जाता है। आगे चलकर भगवान शिव की परम भक्त महारानी अहल्याबाई ने ज्ञानवापी से कुछ हटकर श्री विश्वनाथ के एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण कराया था। महाराजा रणजीत सिंह जी ने इस मन्दिर पर स्वर्ण कलश (सोने का शिखर) चढ़वाया था। काशी में अनेक विशिष्ट तीर्थ हैं, जिनके विषय में लिखा है -

विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम्।
वन्दे काशीं गुहां गंगा भवानीं मणिकर्णिकाम्।।

अर्थात 'विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंग बिन्दुमाधव, ढुण्ढिराज गणेश, दण्डपाणि कालभैरव, गुहा गंगा (उत्तरवाहिनी गंगा), माता अन्नपूर्णा तथा मणिकर्णिक आदि मुख्य तीर्थ हैं।

काशी क्षेत्र में मरने वाले किसी भी प्राणी को निश्चित ही मुक्ति प्राप्त होती है। जब कोई मर रहा होता है, उस समय भगवान श्री विश्वनाथ उसके कानों में तारक मन्त्र का उपदेश करते हैं, जिससे वह आवगमन के चक्कर से छूट जाता है, अर्थात इस संसार से मुक्त हो जाता है।

काशी नगरी की उत्पत्ति तथा उसकी भगवान शिव की प्रियतमा बनने की कथा स्कन्द पुराण के काशी खण्ड में वर्णित है। काशी उत्पत्ति के विषय में अगस्त्य जी ने श्रीस्कन्द से पूछा था, जिसका उत्तर देते हुए श्री स्कन्द ने उन्हें बताया कि इस प्रश्न का उत्तर हमारे पिता महादेव जी ने माता पार्वती जी को दिया था। उन्होंने कहा था कि 'महाप्रलय के समय जगत के सम्पूर्ण प्राणी नष्ट हो चुके थे, सर्वत्र घोर अन्धकार छाया हुआ था। उस समय श्सत्श् स्वरूप ब्रह्म के अतिरिक्त सूर्य, नक्षत्र, ग्रह,तारे आदि कुछ भी नहीं थे। केवल एक ब्रह्म का अस्तित्त्व था, जिसे शास्त्रों में 'एकमेवाद्वितीयम्' कहा गया है। 'ब्रह्म' का ना तो कोई नाम है और न रूप, इसलिए वह मन, वाणी आदि इन्द्रियों का विषय नहीं बनता है। वह तो सत्य है, ज्ञानमय है, अनन्त है,

आनन्दस्वरूप और परम प्रकाशमान है। वह निर्विकार, निराकार, निर्गुण, निर्विकल्प तथा सर्वव्यापी, माया से परे तथा उपद्रव से रहित परमात्मा कल्प के अन्त में अकेला ही था।

कल्प के आदि में उस परमात्मा के मन में ऐसा संकल्प उठा कि 'मैं एक से दो हो जाऊँ'। यद्यपि वह निराकार है, किन्तु अपनी लीला शक्ति का विस्तार करने के उद्देश्य से उसने साकार रूप धारण कर लिया। परमेश्वर के संकल्प से प्रकट हुई वह ऐश्वर्य गुणों से भरपूर, सर्वज्ञानमयी, सर्वस्वरूप द्वितीय मूर्ति सबके लिए वन्दनीय थी। महादेव ने पार्वती जी से कहा - 'प्रिये! निराकार परब्रह्म की वह द्वितीय मूर्ति मैं ही हूँ।

सभी शास्त्र और विद्वान मुझे ही 'ईश्वर' कहते हैं। साकार रूप में प्रकट होने पर भी मैं अकेला ही अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करता हूँ। मैंने ही अपने शरीर से कभी अलग न होने वाली 'तुम' प्रकृति को प्रकट किया है। तुम ही गुणवती माया और प्रधान प्रकृति हो। तुम प्रकृति को ही वृहद तत्त्व को जन्म देने वाली तथा विकार रहित कहा जाता है। काल स्वरूप आदि पुरुष मैंने ही एक साथ तुम शक्ति को और इस काशी क्षेत्र को प्रकट किया है।'

उसके बाद भगवान शिव ने माँ जगदम्बा के साथ अपने बायें अंग में अमृत बरसाने वाली अपनी दृष्टि डाली। उस दृष्टि से अत्यन्त तेजस्वी तीनो लोकों में अतिशय सुन्दर एक पुरुष प्रकट हुआ। वह अत्यन्त शान्त, सतो गुण से परिपूर्ण तथा सागर से भी अधिक गम्भीर और पृथ्वीके समान श्यामल था तथा उसके बड़े-बड़े नेत्र कमल के समान सुन्दर थे। अत्यन्त कमनीय और रमणीय होते हुए भी प्रचण्ड बाहुओं से सुशोभित वह पुरुष सुर्वण रंग के दो पीताम्बरों से अपने शरीर को ढँके हुए था। उसके नाभि कमल से बहुत ही मनमोहक सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी। देखने में वह अकेले ही सम्पूर्ण गुणों की खान तथा समस्त कलाओं का ख़जाना प्रतीत होता था। वह एकाकी ही जगत के सभी पुरुषों में उत्तम था, इसलिए उसे 'पुरुषोत्तम' कहा गया।

सब गुणों से विभूषित उस महान् पुरुष को देखकर महादेव जी ने उससे कहा- 'अच्युत! तुम महाविष्णु हो। तुम्हारे निरूश्वास (सांस) से वेदप्रकट होंगे, जिनके द्वारा तुम्हें सब कुछ ज्ञान हो जाएगा अर्थात तुम सर्वज्ञ बन जाओगे।' इस प्रकार महाविष्णु को कहने के बाद भगवान शंकर (पार्वती) के साथ विचरण करने हेतु आनन्दवन में प्रवेश कर गये।

पुरुषोत्तम भगवान विष्णु जब ध्यान में बैठे, तो उनका मन तपस्या में लग गया। उन्होंने अपने चक्र से एक सुन्दर पुष्करिणी (सरोवर) खोदकर उसे अपने शरीर के पसीने से भर दिया। उसके बाद उस सरोवर के किनारे उन्होंने कठिन तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर पार्वती के साथ भगवान शिव वहाँ प्रकट हो गये। उन्होंने महाविष्णु से वर माँगने के लिए कहा, तो विष्णु ने भवानी सहित हमेशा उनके दर्शन की इच्छा व्यक्त की। भगवान शिव सदा दर्शन देने के वचन को स्वीकार करते हुए बोले कि मेरी मणिमय कर्णिका, यहाँ गिर पड़ी है, इसलिए यह स्थान 'मणिकर्णिका तीर्थ' के नाम से निवेदन किया कि चूँकि मुक्तामय (मणिमय) कुण्डल यहाँ गिरा है, इसलिए यह मुक्ति का प्रधान क्षेत्र माना जाये अर्थात अकथनीय ज्योति प्रकाशित होती रहे। इन कारणों से इसका दूसरा नाम 'काशी' भी स्वीकार हो। विष्णु ने आगे निवेदन किया कि ब्रह्मा से लेकर कीट-पतंग जितने भी प्रकार के जीव हैं, उन सबके काशी क्षेत्र में मरने पर मोक्ष की प्राप्ति अवश्य हो। उस मणिकर्णिका तीर्थ में स्नान, सन्ध्या, जप, हवन, पूजन, वेदाध्ययन, तर्पण, पिण्ड दान, दशमहादान, कन्यादान, अनेक प्रकार के यज्ञों, व्रतोद्यापन, वृषोत्सर्ग तथा शिवलिंग स्थापना आदि शुभ कर्मों का फल मोक्ष के रूप में प्राप्त होवे। जगत में जितने भी क्षेत्र हैं, उनमें सर्वाधिक सुन्दर और शुभकारी हो तथा इस काशी का नाम लेने वाले भी पाप से मुक्त हो जायें।' महाविष्णु की बातों को स्वीकार करते हुए शिव ने उन्हें आदेश दिया कि 'आप विविध प्रकार की यथायोग्य सृष्टि करो और उनमें जो कुमार्ग पर चलने वाले दुष्टात्मा हैं, उनके संहार में भी कारण बनो। पाँच कोस के क्षेत्रफल में फैला यह काशीधाम मुझे अतिशय प्रिय है। मैं यहाँ सदा निवास करता हूँ, इसलिए इस क्षेत्र में सिर्फ मेरी ही आज्ञा चलती है, यमराज आदि किसी अन्य की नहीं। इस 'अविमुक्त' क्षेत्र में रहने वाला पापी हो अथवा धर्मात्मा उन सबका शासक अकेला मैं ही हूँ। काशी से दूर रहकर भी जो मनुष्य मानसिक रूप से इस क्षेत्र का स्मरण करता है, उसे पाप स्पर्श नहीं करता है और वह काशी क्षेत्र में पहुँच कर उसके पुण्य के प्रभाव से मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। जो कोई संयमपूर्वक काशी में बहुत दिनों तक निवास करता है, किन्तु संयोगवश उसकी मृत्यु काशी से बाहर हो जाती है, तो वह भी स्वर्गीय सुख को प्राप्त करता है और अन्त में पुनः काशी में जन्म लेकर मोक्ष पद को प्राप्त करता है।

जो मनुष्य श्री काशी विश्वनाथ की प्रसन्नता के लिए इस क्षेत्र में दान देता है, वह धर्मात्मा भी अपने जीवन को धन्य बना लेता है। पंचक्रोशी (पाँच कोस की) अविमुक्त क्षेत्र विश्वनाथ के नाम से प्रसिद्ध एक ज्योतिर्लिंग का स्वरूप ही जानना और मानना चाहिए। भगवान विश्वनाथ काशी में स्थित होते हुए भी सर्वव्यापी होने के कारण सूर्य की तरह सर्वत्र उपस्थित रहते हैं। जो कोई उस क्षेत्र की महिमा से अनजान है अथवा उसमें श्रद्धा नहीं है, फिर भी वह जब काशी क्षेत्र में प्रवेश करता है या उसकी मृत्यु हो जाती है, तो वह निष्पाप होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। यदि कोई मनुष्य काशी में रहते हुए पापकर्म करता है, तो मरने के बाद वह पहले 'रुद्र पिशाच' बनता है, 'उसके बाद उसकी मुक्ति होती है'।

श्री महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग मध्य प्रदेश के उज्जैन जनपद में अवस्थित है। उज्जैन का पुराणों और प्राचीन अन्य ग्रन्थों में 'उज्जयिनी' तथा 'अवन्तिकापुरी' के नाम से उल्लेख किया गया है। यह स्थान मालवा क्षेत्र में स्थित क्षिप्रा नदी के किनारे विद्यमान है। अवन्तीपुरी की गणना सात मोक्षदायिनी पुरियों में की गई है-

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चौव सप्तैता मोक्षदायिकाः।।

महाराजा विक्रमादित्य द्वारा निर्माण

इसी महाकालेश्वर की नगरी में महाराजा विक्रमादित्य ने चौबीस खम्बों का दरबार-मण्डप बनवाया था। मंगल ग्रह का जन्मस्थान मंगलश्वेर भी यहीं स्थित है। इतिहास प्रसिद्ध भर्तृहरि की गुफा तथा महर्षि सान्दीपनि का आश्रम यहीं विराजमान है। श्री कृष्णचन्द्र और बलराम जी ने इसी सान्दीपनि आश्रम में विद्या का अध्ययन किया था। इसी उज्जयिनी नगरी में परम प्रतापी महाराज वीर विक्रमादित्य की राजधानी थी। जब सिंह राशि पर बृहस्पति ग्रह का आगमन होता है, तो यहाँ प्रत्येक बारह वर्ष पर महाकुम्भ का स्नान और मेला लगता है।

शिव महापुराण में वर्णित कथा

समस्त देहधारियों को मोक्ष प्रदान करने वाली एक प्रसिद्ध और अत्यन्त अवन्ति नाम की नगरी है। लोक पावनी परम पुण्यदायिनी और कल्याण-कारिणी वह नगरी भगवान शिव जी को अत्यन्त प्रिय है। उसी पवित्र पुरी में शुभ कर्मपरायण तथा सदा वेदों के स्वाध्याय में लगे रहने वाले एक उत्तम ब्राह्मण रहा करते थे। वे अपने घर में अग्नि की स्थापना कर प्रतिदिन अग्निहोत्र करते थे और वैदिक कर्मों के अनुष्ठान में लगे रहते थे। भगवान शंकर के भक्त वे ब्राह्मण शिव जी की अर्चना-वन्दना में तत्पर रहा करते थे। वे प्रतिदिन पार्थिव लिंग का निर्माण कर शास्त्र विधि से उसकी पूजा करते थे। हमेशा उत्तम ज्ञान को प्राप्त करने में तत्पर उस ब्राह्मण देवता का नाम 'वेदप्रिय' था। वेदप्रिय स्वयं ही शिव जी के अनन्य भक्त थे, जिसके संस्कार के फलस्वरूप उनके शिव पूजा-परायण ही चार पुत्र हुए। वे तेजस्वी तथा माता-पिता के सद्गुणों के अनुरूप थे। उन चारों पुत्रों के नाम 'देवप्रिय', 'प्रियमेधा', 'संस्कृत' और 'सुवृत' थे।

रत्नमाल पर्वत पर 'दूषण' नाम वाले धर्म विरोधी एक असुर ने वेद, धर्म तथा धर्मात्माओं पर आक्रमण कर दिया। उस असुर को ब्रह्मा से अजेयता का वर मिला था। सबको सताने के बाद

अन्त में उस असुर ने भारी सेना लेकर अवन्ति (उज्जैन) के उन पवित्र और कर्मनिष्ठ ब्राह्मणों पर भी चढ़ाई कर दी। उस असुर की आज्ञा से चार भयानक दैत्य चारों दिशाओं में प्रलयकाल की आग के समान प्रकट हो गये। उनके भयंकर उपद्रव से भी शिव जी पर विश्वास करने वाले वे ब्राह्मणबन्धु भयभीत नहीं हुए। अवन्ति नगर के निवासी सभी ब्राह्मण जब उस संकट में घबराने लगे, तब उन चारों शिवभक्त भाइयों ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा- 'आप लोग भक्तों के हितकारी भगवान शिव पर भरोसा रखें।' उसके बाद वे चारों ब्राह्मण-बन्धु शिव जी का पूजन कर उनके ही ध्यान में तल्लीन हो गये।

सेना सहित दूषण ध्यान मग्न उन ब्राह्मणों के पास पहुँच गया। उन ब्राह्मणों को देखते ही ललकारते हुए बोल उठा कि इन्हें बाँधकर मार डालो। वेदप्रिय के उन ब्राह्मण पुत्रों ने उस दैत्य के द्वारा कही गई बातों पर कान नहीं दिया और भगवान शिव के ध्यान में मग्न रहे। जब उस दुष्ट दैत्य ने यह समझ लिया कि हमारे डाँट-डपट से कुछ भी परिणाम निकलने वाला नहीं है, तब उसने ब्राह्मणों को मार डालने का निश्चय किया। उसने ज्योंही उन शिव भक्तों के प्राण लेने हेतु शस्त्र उठाया, त्योंही उनके द्वारा पूजित उस पार्थिव लिंग की जगह गम्भीर आवाल के साथ एक गड्ढा प्रकट हो गया और तत्काल उस गड्ढे से विकट और भयंकर रूपधारी भगवान शिव प्रकट हो गये। दुष्टों का विनाश करने वाले तथा सज्जन पुरुषों के कल्याणकर्त्ता वे भगवान शिव ही महाकाल के रूप में इस पृथ्वी पर विख्यात हुए। उन्होंने दैत्यों से कहा- 'अरे दुष्टों! तुझ जैसे हत्यारों के लिए ही मैं 'महाकाल' प्रकट हुआ हूँ। जल्दी इन ब्राह्मणों के समीप से दूर भाग जाओ।

इस प्रकार धमकाते हुए महाकाल भगवान शिव ने अपने हुँकार मात्र से ही उन दैत्यों को भस्म कर डाला। दूषण की कुछ सेना को भी उन्होंने मार गिराया और कुछ स्वयं ही भाग खड़ी हुई। इस प्रकार परमात्मा शिव ने दूषण नामक दैत्य का वध कर दिया। जिस प्रकार सूर्य के निकलते ही अन्धकार छँट जाता है, उसी प्रकार भगवान आशुतोष शिव को देखते ही सभी दैत्य सैनिक पलायन कर गये। देवताओं ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी दन्दुभियाँ बजायीं और आकाश से फूलों की वर्षा की। उन शिवभक्त ब्राह्मणों पर अति प्रसन्न भगवान शंकर ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा कि 'मै महाकाल महेश्वर तुम लोगों पर प्रसन्न हूँ, तुम लोग वर मांगो।'

महाकालेश्वर की वाणी सुनकर भक्ति भाव से पूर्ण उन ब्राह्मणों ने हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक कहा- 'दुष्टों को दण्ड देने वाले महाकाल! शम्भो! आप हम सबको इस संसार-सागर से मुक्त कर दें। हे भगवान शिव! आप आम जनता के कल्याण तथा उनकी रक्षा करने के लिए यहीं हमेशा के लिए विराजिए। प्रभो! आप अपने दर्शनार्थी मनुष्यों का सदा उद्धार करते रहें।'

भगवान शंकर ने उन ब्राह्मणों को सद्गति प्रदान की और अपने भक्तों की सुरक्षा के लिए उस गड्ढे में स्थित हो गये। उस गड्ढे के चारों ओर की लगभग तीन-तीन किलोमीटर भूमि लिंग रूपी भगवान शिव की स्थली बन गई। ऐसे भगवान शिव इस पृथ्वी पर महाकालेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग का दर्शन करने से स्वप्न में भी किसी प्रकार का दुःख अथवा संकट नहीं आता है। जो कोई भी मनुष्य सच्चे मन से महाकालेश्वर लिंग की उपासना करता है, उसकी सारी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और वह परलोक में मोक्षपद को प्राप्त करता है-

महाकालेश्वरो नाम शिवः ख्यातश्च भूतले।
तं दुष्ट्वा न भवेत् स्वप्ने किंचिददुःखमपि द्विजाः।।
यं यं काममपेदयैव तल्लिगं भजते तु यः ।
तं तं काममवाप्नेति लभेन्मोक्षं परत्र च ।।

अन्य कथानक

उज्जयिनी नगरी में महान् शिवभक्त तथा जितेन्द्रिय चन्द्रसेन नामक एक राजा थे। उन्होंने शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन कर उनके रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया था। उनके सदाचरण से प्रभावित होकर शिवजी के पार्षदों (गणों) में अग्रणी (मुख्य) मणिभद्र जी राजा चन्द्रसेन के मित्र बन गये। मणिभद्र जी ने एक बार राजा पर अतिशय प्रसन्न होकर राजा चन्द्रसेन को चिन्तामणि नामक एक महामणि प्रदान की। वह महामणि कौस्तुभ मणि और सूर्य के समान देदीप्यमान (चमकदार) थी। वह महा मणि देखने, सुनने तथा ध्यान करने पर भी, वह मनुष्यों को निश्चित ही मंगल प्रदान करती थी।

राजा चनद्रसेन के गले में अमूल्य चिन्तामणि शोभा पा रही है, यह जानकार सभी राजाओं में उस मणि के प्रति लोभ बढ़ गया। चिन्तामणि के लोभ से सभी राजा क्षुभित होने लगे। उन राजाओं ने अपनी चतुरंगिणी सेना तैयार की और उस चिन्तामणि के लोभ में वहाँ आ धमके। चन्द्रसेन के विरूद्ध वे सभी राजा एक साथ मिलकर एकत्रित हुए थे और उनके साथ भारी सैन्यबल भी था। उन सभी राजाओं ने आपस में परामर्श करके रणनीति तैयार की और राजा चन्द्रसेन पर आक्रमण कर दिया। सैनिकों सहित उन राजाओं ने चारों ओर से उज्जयिनी के चारों द्वारों को घेर लिया। अपनी पुरी को चारों ओर से सैनिकों द्वारा घिरी हुई देखकर राजा चन्द्रसेन महाकालेश्वर भगवान शिव की शरण में पहुँच गये। वे निश्छल मन से दृढ़ निश्चय के सथ उपवास-व्रत लेकर भगवान महाकाल की आराधना में जुट गये।

4. ओंकारेश्वर

ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग के साथ ही अमलेश्वर ज्येतिर्लिंग भी है। इन दोनों शिवलिंगों की गणना एक ही ज्योतिर्लिंग में की गई है। ओंकारेश्वर स्थान भी मालवा क्षेत्र में ही पड़ता है। स्कन्द पुराण के रेवा खण्ड में श्री ओंकारेश्वर की महिमा का बखान किया गया है-

देवस्थानसमं ह्येतत् मत्प्रसादाद् भविष्यति।

अन्नदानं तपः पूजा तथा प्राणविसर्जनम्।

ये कुर्वन्ति नरास्तेषां शिवलोकनिवासनम्।। (1)

अर्थात् 'ओंकारेश्वर तीर्थ अलौकिक है। भगवान शंकर की कृपा से यह देवस्थान के समान ही हैं। जो मनुष्य इस तीर्थ में पहुँचकर अन्नदान, तप, पूजा आदि करता है अथवा अपना प्राणोत्सर्ग यानि मृत्यु को प्राप्त होता है, उसे भगवान शिव के लोक में स्थान प्राप्त होता है।'

अमराणां शतैशचौव संवितो हामरेश्वरः।

तथैव ऋषिसंघैशच तेन पुण्यतमो महान्।। (2)

अर्थात् 'महान पुण्यशाली अमरेश्वर (ओंकारेश्वर) तीर्थ हमेशा सैकड़ों देवताओं तथा ऋषि-महर्षि का अत्यन्त पवित्र तीर्थ है।'

नर्मदा नदी के दो धाराओं के बंटने से एक टापू का निर्माण हो गया है, इसे शिवपुरी भी कहा जाता है। नर्मदा की विभक्त धारा दक्षिण की ओर जाती है। दक्षिण की ओर बहने वाली धारा ही प्रधान मानी जाती है, जिसे नाव (नौका) के द्वारा पार किया जाता है। नर्मदा के इस किनारे पर पक्के घाटों का निर्माण कराया गया है। इसी मान्धाता नामक पर्वत पर भगवान ओंकारेश्वर-महादेव विराजमान हैं। इतिहास प्रसिद्ध भगवान के महान् भक्त अम्बरीष और मुचुकुन्द के पिता सूर्यवंशी राजा मान्धाता ने इस स्थान पर कठोर तपस्या करके भगवान शंकर को प्रसन्न किया था। वे एक महान् तपस्वी और विशाल महायज्ञों के कर्त्ता थे। उस महान् पुरुष मान्धाता के नाम पर ही इस पर्वत का नाम मान्धाता पर्वत हो गया। यहाँ के ज्यादातर मन्दिरों का निर्माण पेशवा राजाओं द्वारा ही कराया गया था। ऐसा बताया जाता है कि भगवान ओंकारेश्वर का मन्दिर भी उन्हीं पेशवाओं द्वारा ही बनवाया गया है। इस मन्दिर में दो कमरों (कक्षों) के बीच से होकर जाना पडता है। चूँकि भीतर अन्धेरा रहता है, इसलिए वहाँ हमेशा दीपक जलाया जाता है।

इस ओंकारतीर्थ के ज्योतिर्लिंग को शिव महापुराण में 'परमेश्वर लिंग' कहा गया है। यह परमेश्वर लिंग इस तीर्थ में कैसे प्रकट हुआ अथवा इसकी स्थापना कैसे हुई, इस सम्बन्ध में शिव पुराण की कथा इस प्रकार है- भगवान शिव के अनेक नाम हैं। एक बार नारद ऋषि परम श्रद्धा और बड़ी लगन के साथ उनकी सेवा करने लगे। कुछ समय सेवा में बिताने के बाद मुनिश्रेष्ठ वहाँ से गिरिराज विन्ध्य पर पहुँच गये। विन्ध्य ने बड़े आदर-सम्मान के साथ उनकी विधिवत पूजा की। 'मैं सर्वगुण सम्पन्न हूँ, मेरे पास हर प्रकार की सम्पदा है, किसी वस्तु की

कमी नहीं है'- इस प्रकार के भाव को मन में लिये विन्ध्याचल नारद जी के समक्ष खड़ा हो गया। अहंकारनाशक श्री नारद जी विन्ध्याचल की अभिमान से भरी बातें सुनकर लम्बी साँस खींचते हुए चुपचाप खड़े रहे। उसके बाद विन्ध्यपर्वत ने पूछा- श्आपको मेरे पास कौन-सी कमी दिखाई दी? आपने किस कमी को देखकर लम्बी साँस खींची?'

नारद जी ने विन्ध्याचल को बताया कि तुम्हारे पास सब कुछ है, किन्तु मेरू पर्वत तुमसे बहुत ऊँचा है। उस पर्वत के शिखरों का विभाग, देवताओं के लोकों तक पहुँचा हुआ है। मुझे लगता है कि तुम्हारे शिखर, के भाग वहाँ तक कभी नहीं पहुँच पाएंगे। इस प्रकार कहकर ऋषि नारद जी के चले जाने पर विन्ध्याचल को बहुत पछतावा हुआ। वह दुःखी होकर मन ही मन शोक करने लगा। उसने निश्चय किया कि अब वह विश्वनाथ भगवान सदाशिव की आराधना और तपस्या करेगा। इस प्रकार विचार करने के बाद वह भगवान शंकर जी की सेवा में चला गया। जहाँ पर साक्षात ओंकार विद्यमान हैं। उस स्थान पर पहुँचकर उसने प्रसन्नता और प्रेमपूर्वक शिव की पार्थिव मूर्ति (मिट्टी की शिवलिंग) बनाई और छः महीने तक लगातार उसके पूजन में तन्मय रहा।

वह शम्भू की आराधना-पूजा के बाद निरन्तर उनके ध्यान में तल्लीन हो गया और अपने स्थान से इधर-उधर नहीं हुआ। उसकी कठोर तपस्या को देखकर पार्वतीपति भगवान शिव उस पर प्रसन्न हो गये। उन्होंने विन्ध्यांचल को अपना दिव्य स्वरूप प्रकट कर दिखाया, जिसका दर्शन बड़े -बड़े योगियों के लिए भी अत्यन्त दुर्लभ होता है। सदाशिव भगवान प्रसन्नतापूर्वक विन्ध्याचल से बोले- 'विन्ध्य! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। मैं अपने भक्तों को उनका अभीष्ट, वर प्रदान करता हूँ। इसलिए तुम वर माँगो।' विन्ध्य ने कहा- 'देवेश्वर महेश! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो भक्तवत्सल! हमारे कार्य की सिद्ध करने वाली वह अभीष्ट बुद्ध हमें प्रदान करें!' विन्ध्यपर्वत की याचना को पूरा करते हुए भगवान शिव ने उससे कहा कि- 'पर्वतराज! मैं तुम्हें वह उत्तम वर (बुद्ध) प्रदान करता हूँ। तुम जिस प्रकार का काम करना चाहो, वैसा कर सकते हो। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।'

भगवान शिव ने जब विन्ध्य को उत्तम वर दे दिया, उसी समय देवगण तथा शुद्ध बुद्ध और निर्मल चित्त वाले कुछ ऋषिगण भी वहाँ आ गये। उन्होंने भी भगवान शंकर जी की विधिवत पूजा की और उनकी स्तुति करने के बाद उनसे कहा- 'प्रभो! आप हमेशा के लिए यहाँ स्थिर होकर निवास करें।' देवताओं की बात से महेश्वर भगवान शिव को बड़ी प्रसन्नता हुई। लोकों को सुख पहुँचाने वाले परमेशवर शिव ने उन ऋषियों तथा देवताओं की बात को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया।

वहाँ स्थित एक ही ओंकारलिंग दो स्वरूपों में विभक्त हो गया। प्रणव के अन्तर्गत जो सदाशिव विद्यमान हुए, उन्हें 'ओंकार' नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार पार्थिव मूर्ति में जो ज्योति प्रतिष्ठित हुई थी, वह 'परमेश्वर लिंग' के नाम से विख्यात हुई। परमेश्वर लिंग को ही 'अमलेश्वर' भी कहा जाता है। इस प्रकार भक्तजनों को अभीष्ट फल प्रदान करने वाले 'ओंकारेश्वर' और 'परमेश्वर' नाम से शिव के ये ज्योतिर्लिंग जगत् में प्रसिद्ध हुए। उस समय देवताओं और ऋषियों ने मिलकर उन ज्योतिर्लिंगों का पूजन किया तथा भगवान वृषभ/वज ने शिव को प्रसन्न कर अनेक वर प्राप्त किये-

कारं चौवं यल्लिंगमेकं तच्च द्विधा गतम्।
प्रणवे चौव द्वकारनामसीत्स सदाशिवः।।
पार्थिवे चौव यज्जातं तदासीत्परमेश्वरः।
भक्तीभष्टप्रदौ चोभौ भुक्तिमुक्तिप्रौ द्विजः।
तत्पूजां च तदा चक्रुर्देवाशच ऋषियस्तथा।
प्रापुर्वराननेकांशच संतोष्य वृषभ/वजम्।।

इस प्रकार भगवान शिव के प्रादुर्भाव और निरन्तर निवास से विन्ध्याचल पर्वत को अतीव प्रसन्नता हुई। अभीष्ट वर की प्राप्ति से उसने अपने कार्य की सिद्ध की और अपने मानसिक परिताप का परित्याग कर दिया। शिव पुराण का ऐसा उद्घोष है कि जो मनुष्य भगवान शंकर का पूजन कर निरन्तर ध्यान करता है, उसे दोबारा माता के गर्भ में नहीं आना पड़ता है अर्थात् उसकी मुक्ति हो जाती है। इस ओंकार में परमेश्वर ज्योतिर्लिंग का पूजन सभी प्रकार का मनोवांछित फल देने वाला है।

ओंकारेश्वर लिंग किसी मनुष्य के द्वारा गढ़ा, तराशा या बनाया हुआ नहीं है, बल्कि यह प्राकृतिक शिवलिंग है। इसके चारों ओर हमेशा जल भरा रहता है। प्रायः किसी मन्दिर में लिंग की स्थापना गर्भ गृह के मध्य में की जाती है और उसके ठीक ऊपर शिखर होता है, किन्तु यह ओंकारेश्वर लिंग मन्दिर के गुम्बद के नीचे नहीं है। इसकी एक विशेषता यह भी है कि मन्दिर के ऊपरी शिखर पर भगवान महाकालेश्वर की मूर्ति लगी है। कुछ लोगों की मान्यता है कि यह पर्वत ही ओंकाररूप है। वे लोग इस पर्वत की परिक्रिमा भी करते हैं। यहाँ पर स्थित प्राचीन सिद्धेश्वर महादेव का मन्दिर भी दर्शनीय है। परिक्रमा के अन्तर्गत बहुत से मन्दिरों के विद्यमान होने के कारण भी यह पर्वत ओंकार के स्वरूप में दिखाई पड़ता है। ओंकारेश्वर के मन्दिर आकार में बने चन्द्र का स्थानीय इसमें बने हुए चन्द्रबिन्दु का जो स्थान है, वही स्थान ओंकारपर्वत पर बने ओंकारेश्वर मन्दिर का है। मालूम पड़ता है इस मन्दिर में शिव जी के पास ही माँ पार्वती की भी मूर्ति स्थापित है। यहाँ पर भगवान परमेश्वर महादेव को चने की दाल चढ़ाने की परम्परा है।

5. केदारनाथ

उत्तराखण्ड के हिमालय क्षेत्र में 'चारधाम' के नाम से 'बद्रीनाथ', 'केदारनाथ', 'गंगोत्री' तथा 'यमुनोत्री' प्रसिद्ध हैं। ये तीर्थ देश के सिर-मुकुट में चमकते हुए बहुमूल्य रत्न हैं। इनमें 'बद्रीनाथ' और 'केदारनाथ' तीर्थो के दर्शन का विशेष महत्त्व है। केदारनाथ ज्योतिर्लिंग के प्राचीन मन्दिर का निर्माण पाण्डवों ने कराया था, जो पर्वत की 11750 फुट की ऊँचाई पर अवस्थित है। प्रबंधक प्रदेश सरकार की मन्दिर समिति प्रसिद्ध हिन्दू धार्मिक स्थल यात्रियों के लिए गोचर से हेलिकाप्टर-सेवा भी उपलब्ध है। उत्तराखण्ड प्रदेश के हिमालय क्षेत्र में चारधाम के नाम से बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री तथा यमुनोत्री प्रसिद्ध हैं। ये तीर्थ देश के सिर-मुकुट में चमकते हुए बहुमूल्य रत्न हैं। इनमें बद्रीनाथ और केदारनाथ तीर्थो के दर्शन का विशेष महत्त्व है। केदारखण्ड में द्वादश (बारह) ज्योतिर्लिंग में आने वाले केदारनाथ दर्शन के सम्बन्ध में लिखा है कि जो कोई व्यक्ति बिना केदारनाथ भगवान का दर्शन किये यदि बद्रीनाथ क्षेत्र की यात्रा करता है, तो उसकी यात्रा निष्फल अर्थात् व्यर्थ हो जाती है-

अकृत्वा दर्शनं वैश्वय केदारस्याघनाशिनरू।
यो गच्छेद् बदरीं तस्य यात्रा निष्फलतां व्रजेत्।।

श्री केदारनाथ जी का मन्दिर पर्वतराज हिमालय की 'केदार' नामक चोटी पर अवस्थित है। इस चोटी की पूर्व दिशा में कल-कल करती उछलती अलकनन्दा नदी के परम पावन तट पर भगवान बद्री विशाल का पवित्र देवालय स्थित है तथा पश्चिम में पुण्य सलिला मन्दाकिनी नदी के किनारे भगवान श्री केदारनाथ विराजमान हैं। अलकनन्दा और मंदाकिनी उन दोनों नदियों का पवित्र संगम रुद्रप्रयाग में होता है और वहाँ से ये एक धारा बनकर पुनरू देवप्रयाग में 'भागीरथी-गंगा' से संगम करती हैं। देवप्रयाग में गंगा उत्तराखण्ड के पवित्र तीर्थ 'गंगोत्री' से निकलकर आती है। देवप्रयाग के बाद अलकनन्दा और मंदाकिनी का अस्तित्त्व विलीन होकर गंगा में समाहित हो जाता है तथा वहीं गंगा प्रथम बार हरिद्वार की समतल धरती पर उतरती हैं। भगवान केदारेश्वर ज्योतिर्लिंग के दर्शन के बाद बद्री क्षेत्र में भगवान नर-नारायण का दर्शन करने से मनुष्य के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। और उसे जीवन-मुक्ति भी प्राप्त हो जाती है। इसी आशय को शिव पुराण के कोटि रुद्र संहिता में भी व्यक्त किया गया है-

तस्यैव रूपं दृष्ट्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते।
जीवन्मक्तो भवेत् सोऽपि यो गतो बदरीबने।।
दृष्ट्वा रूपं नरस्यैव तथा नारायणस्य च।
केदारेश्वरनाम्नश्च मुक्तिभागी न संशयः।।

केदारेश्वर (केदारनाथ) ज्योतिर्लिंग के प्राचीन मन्दिर का निर्माण पाण्डवों ने कराया था, जो पर्वत की 11750 फुट की ऊँचाई पर अवस्थित है। पौराणिक प्रमाण के अनुसार 'केदार' महिष अर्थात् भैंसे का पिछला अंग (भाग) है। केदारनाथ मन्दिर की ऊँचाई 80 फुट है, जो एक विशाल चौकोर चबूतरे पर खड़ा है। इस मन्दिर के निर्माण में भूरे रंग के पत्थरों का उपयोग किया गया है। सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह है कि, यह भव्य मन्दिर प्राचीन काल में यान्त्रिक साधनों के अभाव में ऐसे दुर्गम स्थल पर उन विशाल पत्थरों को लाकर कैसे स्थापित किया गया होगा ?यह भव्य मन्दिर पाण्डवों की शिव भक्ति, उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति

तथा उनके बाहुबल का जीता जागता प्रमाण है।

इस मन्दिर में उत्तम प्रकार की कारीगरी की गई है। मन्दिर के ऊपर स्तम्भों में सहारे लकड़ी की छतरी निर्मित है, जिसके ऊपर ताँबा मढ़ा गया है। मन्दिर का शिखर (कलश) भी ताँबे का ही है, किन्तु उसके ऊपर सोने की पॉलिश की गयी है। मन्दिर के गर्भ गृह में केदारनाथ का स्वयंमभू ज्योतिर्लिंग है, जो अनगढ़ पत्थर का है। यह लिंगमूर्ति चार हाथ लम्बी तथा डेढ़ हाथ मोटी है, जिसका स्वरूप भैंसे की पीठ के समान दिखाई पड़ता है। इसके आस-पास सँकरी परिक्रमा बनी हुई है, जिसमें श्रद्धालु भक्तगण प्रदक्षिणा करते हैं। इस ज्योतिर्लिंग के सामने जल, फूल, बिल्वपत्र आदि को चढ़ाया जाता है और इसके दूसरे भाग में यात्रीगण घी पोतते हैं। भक्त लोग इस लिंगमूर्ति को अपनी बाँहों में भरकर भगवान से मिलते भी हैं।

मन्दिर के जगमोहन में द्रौपदी सहित पाँच पाण्डवों की विशाल मूर्तियाँ हैं। केदारनाथ-मन्दिर के प्रवेश द्वार पर नन्दी की विशाल प्रतिमा स्थापित है और वहाँ से दक्षिण की ओर एक पहाड़ी पर श्री भैरव जी का एक सुन्दर मन्दिर है। केदारनाथ-मन्दिर के द्वार पर दोनों ओर द्वारपालों की मूर्तियाँ हैं। केदारनाथ की श्रृंगार मूर्ति पाँच मुखवाली है और इसे हमेशा वस्त्र तथा आभूषणों से सजाया जाता है। मन्दिर में उक्त मूर्तियों के अतिरिक्त पन्द्रह अन्य देवमूर्तियाँ भी स्थापित हैं। मन्दिर से पीछे लगभग तीन हाथ लम्बा एक कुण्ड है, जिसे 'अमृतकुण्ड' कहा जाता है। इस अमृतकुण्ड में दो शिवलिंग हैं। इनके पूर्व और उत्तर भाग में 'हंसकुण्ड' और 'रेतसकुण्ड' स्थित हैं। यहाँ की परम्परा है कि रेतसकुण्ड में पैर (जंघा) टेककर बायें हाथ से तीन आचमन किये जाते हैं। यहीं पर ईशानेश्वर-महादेव की प्रतिमा विराजमान है। केदारनाथजी के मन्दिर के सामने एक छोटे मन्दिर में 'उदक कुण्ड' है। इस कुण्ड में भी रेतसकुण्ड के समान ही आचमन लेने की प्रथा प्रचलित है। इस मन्दिर के पीछे मीठे जल का एक कुण्ड स्थित है, जिसका पानी भक्तगण पीते हैं। श्रावण के महीने में केदारेश्वर की पूजा गंगाजल, बिल्वपत्र तथा ब्रह्मकमल के फूलों से की जाती है। केदारघाटी के इस क्षेत्र में पंचकेदार (पाँच केदारनाथ) प्रसिद्ध हैं, जिनके स्थान मन्दिर और शिवलिंगों का अपना-अपना विशेष महत्त्व है। भगवान केदारनाथ ज्योतिर्लिंग के आविर्भाव के सम्बन्ध में शिवमहापुराण की कथा इस प्रकार है-

भगवान विष्णु के नर और नारायण नामक दो अवतार हुए हैं। नर और नारायण इन दोनों ने पवित्र हिमालय के बदरिकाश्रम में बड़ी तपस्या की थी। उन्होंने पार्थिव (मिट्टी) का शिवलिंग बनाकर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक उसमें विराजने के लिए भगवान शिव से प्रार्थना की। पार्थिव लिंग में शिव के विद्यमान होने पर दोनों (नर व नारायण) ने शास्त्र-विधि से उनकी पूजा-अर्चना की। प्रतिदिन निरन्तर शिव का पार्थिव-पूजन करना और उनके ही ध्यान में मग्न रहना उन तपस्वियों की संयमित दिनचर्या थी। बहुत दिनों के बाद उनकी आराधना से सन्तुष्ट परमेश्वर शंकर भगवान ने कहा कि मैं तुम दोनों पर बहुत प्रसन्न हूँ, इसलिए तुम लोग मुझसे वर माँगो। भगवान शंकर की बात सुनकर प्रसन्न नर और नारायण ने जनकल्याण की भावना से कहा- 'देवेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं और हमें वर देना चाहते हैं, तो आप अपने स्वरूप से पूजा स्वीकार करने हेतु सर्वदा के लिए यहीं स्थित हो जाइए।'

जगत का कल्याण करने वाले भगवान शंकर उन दोनों तपस्वी-बन्धुओं के अनुरोध को स्वीकारते हुए हिमालय के केदारतीर्थ में ज्योतिर्लिंग के रूप में स्थित हो गये। उन दोनों अनन्य भक्तों से पूजित हो सम्पूर्ण भय और दुःख का नाश करने हेतु तथा अपने भक्तों को दर्शन देने की इच्छा से केदारेश्वर महादेव के नाम से प्रसिद्ध भगवान शिव वहाँ सदा ही विद्यमान रहते हैं। भगवान केदारनाथ दर्शन-पूजन करने वाले को सुख-शान्ति प्रदान करते हैं। नर-नारायण की तपस्या के आधार पर विराजने वाले केदारेश्वर की जिसने भी भक्तिभाव से पूजा की, उसे स्वप्न में भी दुःख और कष्ट के दर्शन नहीं हुए। शिव का प्रिय भक्त केदारलिंग के समीप शिव का स्वरूप अंकित कड़ा चढ़ाता है, वह उस वलय से सुशोभित भगवान शिव का दर्शन करके इस भवसागर से पार हो जाता है अर्थात् वह जीवनमुक्त हो जाता है।

जो मनुष्य बदरीवन की यात्रा करके नर तथा नारायण और केदारेश्वर शिव के स्वरूप का दर्शन करता है, निःसन्देह वह मोक्ष पद का भागी बन जाता है। ऐसा मनुष्य जो केदारनाथ ज्योतिर्लिंग में भक्ति-भावना रखता है और उनके दर्शन के लिए अपने स्थान से प्रस्थान करता है, किन्तु रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो जाती है, जिससे वह केदारेश्वर का दर्शन नहीं कर पाता है, तो समझना चाहिए कि निश्चित ही उस मनुष्य की मुक्ति हो गई। शिव पुराण का यह भी अभिमत है कि केदारतीर्थ में पहुँचकर, वहाँ केदारनाथ ज्योतिर्लिंग का पूजन कर जो मनुष्य वहाँ का जल पी लेता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह भक्ति-भाव पूर्वक भगवान नर-नारायण और केदारेश्वर शिवलिंग की पूजा-अर्चना करे। श्री शिव महापुराण के कोटि रुद्र संहिता में इसी बात को निम्नलिखित प्रकार कहा गया है-

केदारेशस्य भक्ता ये मार्गस्थास्तस्य वै मृताः।
तेऽपि मुक्ता भवन्त्येव नात्र कार्य्या विचारणा।।
तत्वा तत्र प्रतियुक्तः केदारेशं प्रपूज्य च।
तत्रत्यमुदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विन्दति।।

6. भीमशंकर

भारतवर्ष में प्रकट हुए भगवान शंकर के बारह ज्योतिर्लिंग में श्री भीमशंकर ज्योतिर्लिंग का छठा स्थान हैं। इस ज्योतिर्लिंग में कुछ मतभेद हैं। द्वादश ज्योतिर्लिंग स्तोत्र में 'डाकिन्यां भीमशंकरम्' ऐसा लिखा है, जिसमें 'डाकिनी' शब्द से स्थान का स्पष्ट उल्लेख नहीं हो पाता है। इसके अनुसार भीमशंकर ज्योतिर्लिंग मुम्बई से पूरब और पूना से उत्तर भीमा नदी के तट पर अवस्थित है।

शिव पुराण के अनुसार भीमशंकर ज्योतिर्लिंग असम प्रान्त के कामरूप जनपद में गुवाहाटी के पास ब्रह्मरूप पहाड़ी पर स्थित है। कुछ लोग तो उत्तराखंड प्रदेश के नैनीताल जिले में 'उज्जनक' स्थान पर स्थित भगवान शिव के विशाल मन्दिर को भी भीमशंकर ज्योतिर्लिंग कहते हैं। श्री शिव महापुराण के कोटि रुद्र संहिता में श्री भीमशंकर ज्योतिर्लिंग के सम्बन्ध में लिखा है -

'लोक हित की कामना से भगवान शंकर कामरूप देश में ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रकट हुए। उनका वह कल्याणकारक स्वरूप बड़ा ही सुखदायी था। पूर्वकाल में भीम नामक एक महाबलशाली और पराक्रमी राक्षस उत्पन्न हुआ था। वह अत्याचारी राक्षस जगह-जगह धर्म का नाश करता हुआ सम्पूर्ण प्राणियों को सताया करता था। भयंकर बलशाली वह राक्षस कुम्भकर्ण के वीर्य और कर्कट की पुत्री कर्कटी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। भीम अपनी माता कर्कटी के साथ ही 'सह्य' नामक पर्वत पर निवास करता था। उसने अपने जीवन में अपने पिता को कभी नहीं देखा था। एक दिन उसने आपनी माता से पूछा- 'माँ! तुम इस पर्वत पर अकेली क्यों रहती हो ?मेरे पिताजी कौन हैं और कहाँ रहते हैं ? मुझे ये सब बातें जानने की बड़ी इच्छा है, इसलिए तुम सच-सच बताओ'

मात मे करू पिता कुत्र कथं वैकाकिनी स्थिता।
ज्ञातुमिच्छमि तत्सर्वं यथार्थं त्वं वदाधुना।।

तदनन्तर उसकी माता कर्कटी ने उसे विस्तार से बताया कि तुम्हारे पिता का नाम कुम्भकर्ण था, जो रावण के छोटे भाई थे। महाबलशाली और पराक्रमी उस वीर को भाई सहित श्रीराम ने मार डाला था। मेरे पिता अर्थात् तुम्हारे नाना का नाम कर्कट और नानी का नाम पुष्कसी था। मेरे पूर्व पति का नाम 'विराध' था, जिन्हें पहले ही श्रीराम ने मार डाला था। मैं अपने प्रिय स्वामी विराध के मारे जाने पर अपने माता-पिता के पास आकर रहने लगी थी, क्योंकि मेरा सहारा अन्य कोई नहीं था। एक दिन मेरे माता-पिता आहार की खोज में निकले और उन्होंने अगस्त्य मुनि के परम शिष्य तपस्वी सुतीक्ष्ण को अपना आहार बनाना चाहा, किन्तु वे ऋषि महान् तपस्वी और महात्मा थे। इसलिए उन्होंने कुपित होकर अपने तपोबल से मेरे माता-पिता को भस्म कर डाला। वे दोनों वहीं मर गये और मैं अकेली अनाथ हो गई। मुझ पर चारों तरफ से दुरूख का पहाड़ टूट पड़ा और मैं दुरूखी होकर अकेली इस पर्वत पर रहने लगी। मेरा इस दुनिया में कोई अवलम्बन क्या सहारा भी न रहा और मैं आतुर होकर एकाकी ही किसी प्रकार अपना जीवन जी रही थी। एक दिन इस सुनसान पहाड़ पर राक्षसराज रावण के छोटे भाई महाबल और पराक्रम से युक्त कुम्भकर्ण आ गये। उन्होंने मेरे साथ बलात्कार किया और समागम के बाद वे मुझे यहीं छोड़कर पुनरः लंका में चले गये। उसके बाद समय पूरा होने पर तुम्हारा जन्म हुआ। बेटा ! तुम अपने पिता के समान ही साक्षात महाबली और पराक्रमी हो। तुम्हें ही देख-देखकर, तुम्हारे ही सहारे अब मैं अपना जीवन चला रही हूँ और किसी तरह समय बीत रहा है।

अपनी माता कर्कटी के बात सुनकर भयानक पराक्रमी राक्षस

कुपित हो उठा। उसने विचार किया कि विष्णु के साथ कैसा व्यवहार किया जाना चाहिए, उनसे प्रतिरोध (बदला) लेने का क्या उपाय है? वह चिन्तित होकर अपनी माँ की बातों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगा- 'विष्णु ने मेरे पिता को मार डाला। मेरे नाना-नानी भी उनके ही भक्त के हाथों मारे गये। इतना ही नहीं विराध को भी उन्होंने ही मार डाला। निश्चित ही श्रीहरि ने मुझ पर बहुत ही अत्याचार किया है, अत्यधिक कष्ट दिया है। उसने निश्चय किया कि हरि द्वारा किये गये कृत्य का बदला वह अवश्य लेगा। उसने अपनी माता के सामने कहा कि यदि मैं अपने पिता का पुत्र हूँ, तो श्री हरि से अवश्य ही बदला लेकर रहूँगा, उन्हें भारी कष्ट दूँगा।

इस प्रकार निश्चय कर वह बलवान राक्षस अपनी शक्ति को और अधिक बढ़ाने के लिए तपस्या करने चला गया। उसने संकल्प लेकर ब्रह्माजी को प्रसन्न करने हेतु एक हजार वर्षों तक तप किया। वह मानसिक रूप से अपने इष्टदेव के ध्यान में ही मग्न रहता था। उसकी तपस्या, ध्यान और अर्चना-वन्दना से लोकपितामह ब्रह्मा जी प्रसन्न हो उठे। ब्रह्मा जी ने उसे वर देने की इच्छा से कहा- 'भीम! मैं तुम्हारी तपस्या और धैर्य से बहुत प्रसन्न हूँ और तुम्हें वर देना चाहता हूँ। इसलिए तुम अपना अभीष्ट वर मांगो।' तदनन्तर उस राक्षस ने कहा - 'देवेश्वर! यदि आप मेरे ऊपर सच में प्रसन्न हैं और मेरा भला करना चाहते हैं, तो आप मुझे अतुलनीय बल प्रदान कीजिए। मुझे इतना बल और पराक्रम प्राप्त हो, जिसकी तुलना कहीं भी न हो सके।' इस प्रकार बोलते हुए राक्षस भीम ने बार-बार ब्रह्मा जी को प्रणाम किया।

उसकी तपस्या से प्रभावित ब्रह्मा जी उसे अतुलनीय बल-प्राप्ति का वर देकर अपने धाम चले गये। ब्रह्मा जी से अतुलनीय बल प्राप्त करने के कारण वह राक्षस अत्यन्त प्रसन्न हो गया। उसने अपने निवास पर आकर अपनी माता जी को प्रणाम किया और अत्यन्त अहंकार के साथ उससे कहा - 'माँ! अब तुम मेरा बल और पराक्रम देखो। अब मैं इन्द्र इत्यादि देवताओं के साथ ही इनका सहयोग करने वाले महान् श्री हरि का भी संहार कर डालूँगा। अपनी माँ से इस प्रकार कहने के बाद वीर राक्षस भीम ने इन्द्रादि देवताओं पर चढ़ाई कर दी। उसने उन सबको जीत लिया और उनके स्थान से उन्हें भगा दिया। उसके बाद तो उसने घोर युद्ध करके देवताओं का पक्ष लेने वाले श्रीहरि को भी परजित कर दिया।

उसके बाद भीम ने प्रसन्नतापूर्वक सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतने का अभियान चलाया। वह सर्वप्रथम कामरूप देश के राजा सुदक्षिण को जीतने के लिए पहुँचा। उसने उस राजा के साथ भंयकर युद्ध किया। क्योंकि ब्रह्मा जी के वरदान से भीम के पास अतुलनीय शक्ति प्राप्त थी, इसलिए महावीर और शिव के परम भक्त सुदक्षिण युद्ध में परास्त हो गये। उसने राजा का राज्य और उनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति को अपने अधिकार में ले लिया। इतने पर भी उस पराक्रमी राक्षस भीम का क्रोध शान्त नहीं हुआ, तो उसने धर्म प्रेमी और शिव के अनन्य भक्त राजा सुदक्षिण को कैद कर लिया। सुदक्षिण के पैरों में बेड़ी डालकर उन्हें एकान्त स्थान में निरुद्ध (बन्द) कर दिया। उस एकान्त स्थान का लाभ उठाते हुए शिव भक्त राजा सुदक्षिण ने भगवान शिव की उत्तम पार्थिव मूर्ति बनाकर उनका भजन-पूजन प्रारम्भ कर दिया।

गंगा जी को भी प्रसन्न करने के लिए राजा ने ढेर सारी स्तुति की और विवशता के कारण मानसिक स्नान किया। उसके बाद उन्होंने शास्त्र विधि से पार्थिव लिंग में भगवान शिव की अर्चना की। उसके बाद वे विधिपूर्वक भगवान शिव का ध्यान करते हुए पंचाक्षर मन्त्र अर्थात् 'ॐ नमः शिवाय' का जप करने लगे। राजा सुदक्षिण इसी दिनचर्या को अपनाकर रात-दिन शिव जी की भक्ति में लगे रहते थे। उनकी साध्वी धर्मपत्नी रानी दक्षिणा भी राजा का अनुकरण करती हुई श्राद्ध-भक्ति पूर्वक पार्थिव पूजन में जुट गयीं। वे पति-पत्नी अकारण करुणावरुणालय भगवान शिव को प्रसन्न करने हेतु अनन्य भाव से उनकी भक्ति में लीन रहते थे।

राक्षस भीम ब्रह्मा जी के वरदान के कारण अत्यन्त अहंकार में डूब गया। अभिमान में मोहित होकर वह यज्ञों का विध्वंस करने लगा और तमाम धार्मिक कृत्यों में बाधा डालने लगा। उसने जनता में ऐसी घोषणा करवा दी कि संसार का सब कुछ उसे ही मानें और समझें। इस प्रकार उस दुष्ट राक्षस ने एक विशाल सेना इकट्ठी करके सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने अधिकार में कर लिया। उसके बाद उसके दुराचारों की सीमा न रही।

राक्षस भीम के अत्याचार से पीड़ित सभी देवता और ऋषिगण महाकोशी नदी के किनारे जाकर भगवान शिव की आराधना और स्तुति करने लगे। उनकी सामूहिक स्तुति और प्रार्थना से भगवान शंकर ने देवताओं से कहा - 'देवगण तथा महर्षियों! मैं आप लोगों पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, बोलिए, आप लोगों का कौन-सा अभीष्ट कार्य (प्रियकार्य) सिद्ध करूँ?' देवताओं ने देवाधिदेव से कहा कि 'आप अन्तर्यामी हैं, इसलिए सबके मन की बात जानते हैं। आपसे कोई भी रहस्य छिपा नहीं रह सकता है।' देवताओं ने आगे कहा - 'महेश्वर! राक्षस कुम्भकर्ण से उत्पन्न कर्कटी का महाबलशाली पुत्र राक्षस भीम, ब्रह्मा जी से वर प्राप्त कर अत्यन्त शक्तिशाली और अभिमान में आ गया है तथा देवताओं को अनवरत कष्ट पहुँचा रहा है। भगवान! बिना देरी किये आप उस दुरूखदायी राक्षस का शीघ्र ही नाश कर डालिए। हम सभी देवगण उससे अत्यन्त क्षुब्ध होकर आपकी शरण में आये हैं।'

7. त्रयम्बकेश्वर

त्रयम्बकेश्वर मंदिर महाराष्ट्र प्रान्त के नासिक जनपद में नासिक शहर से तीस किलोमीटर पश्चिम में अवस्थित है। इसे त्रयम्बक ज्योतिर्लिंग, त्रयम्बकेश्वर शिव मन्दिर भी कहते है। यहाँ समीप में ही ब्रह्मगिरि नामक पर्वत से गोदावरी नदी निकलती है। जिस प्रकार उत्तर भारत में प्रवाहित होने वाली पवित्र नदी गंगा का विशेष आध्यात्मिक महत्त्व है, उसी प्रकार दक्षिण में प्रवाहित होने वाली इस पवित्र नदी गोदावरी का विशेष महत्त्व है। जहाँ उत्तरभारत की गंगा को 'भागीरथी' कहा जाता हैं, वहीं इस गोदावरी नदी को 'गौतमी गंगा' कहकर पुकारा जाता है। भागीरथी राजा भगीरथ की तपस्या का परिणाम है, तो गोदावरी ऋषिगौतम की तपस्या का साक्षात फल है।

देश में लगने वाले विश्व के प्रसिद्ध चार महाकुम्भ मेलों में से एक महाकुम्भ का मेला यहीं लगता है। यहाँ प्रत्येक बारहवें वर्ष जब सिंह राशि पर बृहस्पति का पदार्पण होता है और सूर्य नारायण भी सिंह राशि पर ही स्थित होते हैं, तब महाकुम्भ पर्व का स्नान, मेला आदि धार्मिक कृत्यों का समारोह होता है। उन दिनों गोदावरी गंगा में स्नान का आध्यात्मिक पुण्य बताया गया है। गोदावरी के उद्गगम स्थल के समीप ही श्री त्रयम्बकेश्वर शिव अवस्थित हैं, जिनकी महिमा का बखान पुराणों में किया गया है। ऋषि गौतम और पवित्र नदी गोदावरी की प्रार्थना पर ही भगवान शिव ने इस स्थान पर अपने वास की स्वीकृति दी थी। वही भगवान शिव त्रयम्बकेश्वर' नाम से इस जगत् में विख्यात हुए। यहाँ स्थित ज्योतिर्लिंग का प्रत्यक्ष दर्शन स्त्रियों के लिए निषि(है, अतः वे केवल भगवान के मुकुट का दर्शन करती हैं। त्रयम्बकेश्वर-मन्दिर में सर्वसामान्य लोगों का भी प्रवेश न होकर, जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) हैं तथा भजन-पूजन करते हैं और पवित्रता रखते हैं, वे ही लोग मन्दिर के अन्दर प्रवेश कर पाते हैं। इनसे अतिरिक्त लोगों को बाहर से ही मन्दिर का दर्शन करना पड़ता है।

यहाँ मन्दिर के भीतर एक गड्ढे में तीन छोटे-छोटे लिंग हैं, जो ब्रह्मा विष्णु और शिव इन तीनों देवों के प्रतीक माने जाते हैं। ब्रह्मगिरी से निकलने वाली गोदावरी की जलधारा इन त्रिमूर्तियों पर अनवरत रूप से पड़ती रहती है। ब्रह्मगिरि पर्वत के ऊपर जाने के लिए सात सौ सीढ़ियों का निर्माण कराया गया है। ऊपरी पहाड़ी पर 'रामकुण्ड' और 'लक्ष्मणकुण्ड' नामक दो कुण्ड भी स्थित हैं। पर्वत की चोटी पर पहुँचने पर गोमुखी से निकलती हुई भगवान गौतमी (गोदावरी) का दर्शन प्राप्त होता है। श्री शिव महापुराण के कोटिरुद्र संहिता में ऋषिगौतम- गौतमी-गोदावरी तथा त्रयम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंग के सम्बन्ध में विस्तार से वर्णन किया गया है जो इस प्रकार है-

'पूर्व समय में गौतम नाम के एक प्रसिद्ध ऋषि अपनी धर्मपत्नी अहल्या के साथ रहते थे। उन्होंने दक्षिण भारत के ब्रह्मगिरि पर्वत पर दस हजार वर्षों तक कठोर तपस्या की थी। एक समय वहाँ सौ वर्षों तक वर्षा बिल्कुल नहीं हुई, सब जगह सूखा पड़ने के कारण जीवधारियों में बेचौनी हो गई। जल के अभाव में पेड़-पौधे सूख गये, पृथ्वी पर महान् संकट टूट पड़ा, सर्वत्र चिन्ता ही चिन्ता, आखरि जीवन को धारण करने वाला जल कहाँ से लाया जाये? उस समय मनुष्य, मुनि, पशु, पक्षी तथा अन्य जीवनधारी भी जल के लिए भटकते हुए विविध दिशाओं में चले गये। उसके बाद ऋषि गौतम ने छः महीने तक कठोर तपस्या करके वरुण देवता को प्रसन्न किया।

ऋषि ने वरुण देवता से जब जल बरसाने की प्रार्थना की, तो उन्होंने कहा कि मैं देवताओं के विधान के विपरीत वृष्टि नहीं कर सकता, किन्तु तुम्हारी इच्छा की पूर्ति हेतु तुम्हें 'अक्षय', जल देता हूँ। तुम उस जल को रखने के लिए एक गड्ढा तैयार करो। वरुण देव के आदेश के अनुसार ऋषिगौतम ने एक हाथ गहरा गड्ढा खोद दिया, जिसे वरुण ने अपने दिव्य जल से भर दिया। उसके बाद उन्होंने परोपकार परायण ऋषि गौतम से कहा- 'महामुने! यह अक्षुण्ण जल कभी नष्ट नहीं होगा और तीर्थ बनकर इस पृथ्वी पर तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगा। इसके समीप दान-पुण्य, हवन-यज्ञ, तर्पण, देव पूजन और पितरों का श्रा(, सब कुछ अक्षय फलदायी होंगे। उसके बाद उस जल से ऋषि गौतम ने बहुतों का कल्याण किया, जिससे उन्हें सुख की अनुभूति हुई।

8. वैद्यनाथ

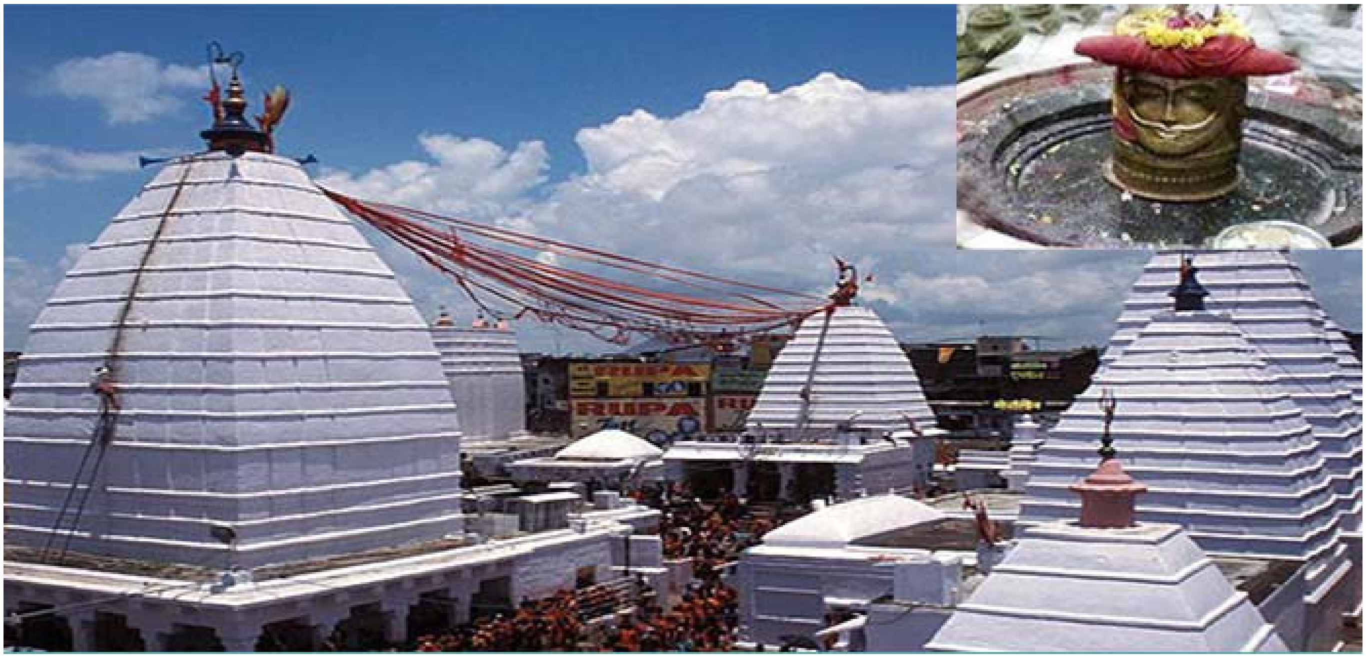

भगवान श्री वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग का मन्दिर जिस स्थान पर अवस्थित है, उसे 'वैद्यनाथधाम' कहा जाता है। यह स्थान झारखण्ड प्रान्त, पूर्व में बिहार प्रान्त के सन्थाल परगना के दुमका नामक जनपद में पड़ता है।

पुराणों में 'परल्यां वैद्यनाथं च' ऐसा उल्लेख मिलता है, जिसके आधार पर कुछ लोग वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग का स्थान 'परलीग्राम' को बताते हैं। 'परलीग्राम' निजाम हैदराबाद क्षेत्र के अंतर्गत पड़ता है। हैदराबाद शहर से जो रेलमार्ग परभणी जंक्शन की ओर जाता है, उस परभनी जंक्शन से परली स्टेशन के लिए रेल की एक उपशाखा जाती है। इसी परली स्टेशन से थोड़ी ही दूरी पर परलीग्राम है, जिसके पास ही 'श्री वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग अवस्थित है। यहाँ का मन्दिर अत्यन्त पुराना है, जिसका जीर्णोद्धार रानी अहिल्याबाई ने कराया था। यह मन्दिर एक पहाड़ी के ऊपर निर्मित है। पहाड़ी से नीचे एक छोटी नदी भी बहती है तथा एक छोटा-सा शिवकुण्ड भी है। पहाड़ी के ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। लोगों की मान्यता है कि परली ग्राम के पास स्थित वैद्यनाथ ही वास्तविक वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग है। मान्य ग्रन्थ प्राचीन शिव पुराण के अनुसार झारखण्ड प्रान्त के जसीडीह रेलवे स्टेशन के समीप स्थित देवघर का श्री वैद्यनाथ शिवलिंग ही वास्तविक वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग है-

वैद्यनाथावतारो हि नवमस्तत्र कीर्तितः।
आविर्भूतो रावणार्थं बहुलीलाकरः प्रभुः।।
तदानयनरूपं हि व्याजं कृत्वा महेश्वरः।
ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण चिताभूमौ प्रतिष्ठितः।।
वैद्यनाथेश्वरो नाम्ना प्रसिद्धोऽभूज्जगत्त्रये।
दर्शनात्पूजनाद्भक्त्या भुक्तिमुक्तिप्रदः (स. हि.1)

श्री शिव महापुराण के उपर्युक्त द्वादश ज्योतिर्लिंग की गणना के क्रम मे श्री वैद्यनाथ को नौवाँ ज्योतिर्लिंग बताया गया है। स्थान का संकेत करते हुए लिखा गया है कि 'चिताभूमौ प्रतिष्ठितः'। इसके अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी 'वैद्यनाथं चिताभूमौ' ऐसा लिखा गया है। 'चिताभूमौ' शब्द का विश्लेषण करने पर परली के वैद्यनाथ द्वादश ज्योतिर्लिंगों में नहीं आते हैं, इसलिए उन्हें वास्तविक वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग मानना उचित नहीं है। सन्थाल परगना जनपद के जसीडीह रेलवे स्टेशन के समीप देवघर पर स्थित स्थान को 'चिताभूमि' कहा गया है। जिस समय भगवान शंकर सती के शव को अपने कन्धे पर रखकर इधर-उधर उन्मत्त की तरह घूम रहे थे, उसी समय इस स्थान पर सती का हृत्पिण्ड अर्थात हृदय भाग गलकर गिर गया था। भगवान शंकर ने सती के उस हृत्पिण्ड का दाह-संस्कार उक्त स्थान पर किया था, जिसके कारण इसका नाम 'चिताभूमि' पड़ गया। श्री शिव पुराण में एक निम्नलिखित श्लोक भी आता है, जिससे वैद्यनाथ का उक्त चिताभूमि में स्थान माना जाता है।

प्रत्यक्षं तं तदा दृष्टवा प्रतिष्ठाप्य च ते सुराः।
वैद्यनाथेति सम्प्रोच्य नत्वा नत्वा दिवं ययुः।।

अर्थात 'देवताओं ने भगवान का प्रत्यक्ष दर्शन किया और उसके बाद उनके लिंग की प्रतिष्ठा की। देवगण उस लिंग को 'वैद्यनाथ' नाम देकर, उसे नमस्कार करते हुए स्वर्गलोक को चले गये।'

9. नागेश्वर

इस प्रसिद्ध शिवलिंग की स्थापना के सम्बन्ध में इतिहास इस प्रकार है- एक धर्मात्मा, सदाचारी और शिव जी का अनन्य वैश्य भक्त था, जिसका नाम 'सुप्रिय' था। जब वह नौका (नाव) पर सवार होकर समुद्र के जलमार्ग से कहीं जा रहा था, उस समय 'दारूक' नामक एक भयंकर बलशाली राक्षस ने उस पर आक्रमण कर दिया। राक्षस दारूक ने सभी लोगों सहित सुप्रिय का अपहरण कर लिया और अपनी पुरी में ले जाकर उसे बन्दी बना लिया। चूँकि सुप्रिय शिव जी का अनन्य भक्त था, इसलिए वह हमेशा शिव जी की आराधना में तन्मय रहता था। कारागार में भी उसकी आराधना बन्द नहीं हुई और उसने अपने अन्य साथियों को भी शंकर जी की आराधना के प्रति जागरूक कर दिया। वे सभी शिवभक्त बन गये। कारागार में शिवभक्ति का ही बोल-बाला हो गया।

जब इसकी सूचना राक्षस दारूक को मिली, तो वह क्रोध में उबल उठा। उसने देखा कि कारागार में सुप्रिय ध्यान लगाए बैठा है, तो उसे डाँटते हुए बोला - 'अरे वैश्य! तू आँखें बन्द करके मेरे विरुद्ध कौन-सा षड्यन्त्र रच रहा है?' वह जोर-जोर से चिल्लाता हुआ धमका रहा था, इसलिए उस पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

घमंडी राक्षस दारूक ने अपने अनुचरों को आदेश दिया कि सुप्रिय को मार डालो। अपनी हत्या के भय से भी सुप्रिय डरा नहीं और वह भयहारी, संकटमोचक भगवान शिव को पुकारने में ही लगा रहा। उस समय अपने भक्त की पुकार पर भगवान शिव ने उसे कारागार में ही दर्शन दिया। कारागार में एक ऊँचे स्थान पर चमकीले सिंहासन पर स्थित भगवान शिव ज्योतिर्लिंग के रूप में उसे दिखाई दिये। शंकरजी ने उस समय सुप्रिय वैश्य का अपना एक पाशुपतास्त्र भी दिया और उसके बाद वे अन्तर्धान (लुप्त) हो गये। पाशुपतास्त्र (अस्त्र) प्राप्त करने के बाद सुप्रिय ने उसक बल से समचे राक्षसों का संहार कर डाला और अन्त में वह स्वयं शिवलोक को प्राप्त हुआ। भगवान शिव के निर्देशानुसार ही उस शिवलिंग का नाम 'नागेश्वर ज्योतिर्लिंग' पड़ा। 'नागेश्वर ज्योतिर्लिंग' के दर्शन करने के बाद जो मनुष्य उसकी उत्पत्ति और माहात्म्य सम्बन्धी कथा को सुनता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है तथा सम्पूर्ण भौतिक और आध्यात्मिक सुखों को प्राप्त करता है-

एतद् यः श्रृणुयान्नित्यं नागेशद्भवमादरात्।
सर्वान् कामनियाद् धीमान् महापातकनशनात्।।

उपर्युक्त ज्योतिर्लिंग के अतिरिक्त नागेश्वर नाम से दो अन्य शिवलिंगों की भी चर्चा ग्रन्थों में प्राप्त होती है। मतान्तर से इन

लिंगों को भी कुछ लोग नागेश्वर ज्योतिर्लिंग कहते हैं। इनमें से एक नागेश्वर ज्योतिर्लिंग निजाम हैदराबाद, आन्ध्र प्रदेश ग्राम में अवस्थित हैं। मनमाड से द्रोणाचलम तक जाने वाली रेलवे पर परभणी नामक प्रसिद्ध स्टेशन है। परभनी से कुछ ही दूरी पर पूर्णा जंक्शन है, जहाँ से रेलमार्ग पर 'चारेंडी' नामक स्टेशन है, जहाँ से लगभग 18 किलोमीटर की दूरी 'औढ़ाग्राम' है। स्टेशन से मोटरमार्ग द्वारा 'औढ़ाग्राम' पहुँचा जाता है।

इसी प्रकार उत्तराखंड प्रदेश के अल्मोड़ा जनपद में एक 'योगेश' या 'जागेश्वर शिवलिंग' अवस्थित है, जिसे नागेश्वर ज्योतिर्लिंग' बताया जाता है। यह स्थान अल्मोड़ा से लगभग 25 किलोमीटर उत्तर पूर्व की ओर है, जिसकी दूरी नैनीताल से लगभग 100 किलोमीटर है। यद्यपि शिव पुराण के अनुसार समुद्र के किनारे द्वारका पुरी के पास स्थित शिवलिंग ही ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रमाणित होता है।

'जागेश्वर शिवलिंग को नागेश्वर ज्योतिर्लिंग कहने या मानने के कुछ प्रमुख ऐतिहासिक कारण इस प्रकार हैं-

द्वादश ज्योतिर्लिंगों के पाठ में 'नागेश दारूकावने' ऐसा उल्लेख मिलता है। अल्मोड़ा के समीप स्थित शिवलिंग जागेश्वर के नाम से जाना जाता है। ऐसी स्थिति में 'योगेश' किस प्रकार नागेश बन गये?इस सन्दर्भ में ध्यान देने योग्य बात यह है कि कश्मीर प्रान्त के पहाड़ियों तथा विभिन्न मैदानी क्षेत्रों से अनेक में पौण्ड्रक, द्रविड, कम्बोज, यवन, शक पल्लव, राद, किरात, दरद, नाग और खस आदि प्रमुख थीं। महाभारत के अनुसार ये सभी जातियाँ बहुत पराक्रमी तथा सभ्यता-सम्पन्न थीं। जब पाण्डवों को इन लोगों से संघर्ष करना पड़ा तब उन्हें भी ज्ञान हुआ कि ये सभी क्षत्रिय धर्म और उसके गुणों से सम्पन्न हैं।

रामेश्वर यह हिंदुओं के चार धामों में से एक धाम है। यह तमिलनाडु राज्य मदुरै में स्थित है। यहां शिव और पार्वती विराजमान है।

रामेश्वर या रामेश्वरम या श्रीरामलिंगेश्वर ज्योतिर्लिंग हिंदुओं का एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। यह हिंदुओं के चार धामों में से एक धाम है। यह तमिलनाडु राज्य के रामनाथपुरम जिले में स्थित है। मन्नार की खाड़ी में स्थित द्वीप जहां भगवान् राम का लोक-प्रसिद्ध विशाल मंदिर है।श्री रामेश्वर जी का मन्दिर एक हजार फुट लम्बा, छः सौ पचास फुट चौड़ा तथा एक सौ पच्चीस फुट ऊँचा है। इस मन्दिर में प्रधान रूप से एक हाथ से भी कुछ अधिक ऊँची शिव जी की लिंग मूर्ति स्थापित है। इसके अतिरिक्त भी मन्दिर में बहुत-सी सुन्दर-सुन्दर शिव प्रतिमाएँ हैं। नन्दी जी की भी एक विशाल और बहुत आकर्षक मूर्ति लगायी गई है। भगवान शंकर और पार्वती की चल-प्रतिमाएँ भी हैं, जिनकी शोभायात्रा वार्षिकोत्सव पर निकाली जाती है। इस अवसर पर सोने और चाँदी के वाहनों पर बैठा कर शिव और पार्वती की सवारी निकलती है। वार्षिकोत्सव पर रामेश्वरम ज्योतिर्लिंग को चाँदी के त्रिपुण्ड और श्वेत उत्तरीय से अलंकृत किया जाता है अर्थात सजाया जाता है, जिससे लिंग की अद्भुत शोभा होती है। उत्तराखंड के गंगोत्री से गंगाजल लेकर श्री रामेश्वरम ज्योतिर्लिंग पर चढ़ाने का विशेष महत्त्व बताया गया है। श्री रामेश्वर पहुँचने वाले तीर्थ यात्री के पास यदि गंगाजल उपलब्ध नहीं है, तो वहाँ के पण्डे लोग दक्षिणा लेकर छोटी-छोटी शीशियों में (इत्र की शीशी जैसी) गंगाजल देते हैं।

कहा जाता है कि इसी स्थान पर श्रीरामचंद्रजी ने लंका के अभियान के पूर्व शिव की अराधना करके उनकी मूर्ति की स्थापना की थी। वास्तव में यह स्थान उत्तर और दक्षिण भारत की संस्कृतियों का संगम है। पुराणों में रामेश्वरम् का नाम गंधमादन है। मन्नार द्वीप उत्तर से दक्षिण तक लगभग ग्यारह और पूर्व से पश्चिम तक लगभग सात मील चौड़ा है। बस्ती के पूर्व समुद्र तट पर लगभग 900 फुट लंबे और 600 फुट चौड़े स्थान पर रामेश्वरम् का मंदिर बना है। इसके चतुर्दिक् परकोटा है जिसकी ऊंचाई 22 फुट है। इसमें तीन ओर एक-एक और पूर्व की ओर दो गोपुर है। पश्चिम का गोपुर सात खना है और लगभग सौ फुट ऊंचा है। अन्य गोपर अर्धनिर्मित अवस्था में है और दीवार से अधिक ऊंचे नहीं है। रामेश्वरम् का मुख्य मंदिर 120 फुट ऊंचा है। तीन प्रवेशद्वारों के भीतर शिव के प्रख्यात द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक यहां स्थित है। मूर्ति के ऊपर शेषनाग अपने फनों से छाया करते हुए प्रदर्शित हैं। रामेश्वरम् के मंदिर की भव्यता उसके सहस्त्रों स्तंभों वाले बरामदे के कारण है। यह 4000 फुट लंबा है। लगभग 690 फुट की अव्यवहित दूरी तक इन स्तंभों की लगातार पंक्तियां देखकर जिस भव्य तथा अनोखे दृश्य का आंखों को ज्ञान होता है वह अविस्मरणीय है। भारतीय वास्तु के विद्वान् फर्गुसन के मत में रामेश्वरम्-मंदिर की कला में द्रविड़ शैली के सर्वोत्तम सौंदर्य तथा उसके दोषों दोनों ही का समावेश है। उनका कहना है कि तंजौर का मंदिर यद्यपि रामेश्वरम् मंदिर की अपेक्षा विशालता तथा सूक्ष्म तक्षण की दृष्टि से उत्तमता से उसका दशमांश भी नहीं है किंतु संपूर्ण रूप से देखने पर उससे अधिक प्रभावशाली जान पड़ता है। रामेश्वरम् के निकट लक्ष्मणतीर्थ, रामतीर्थ, रामझरोखा (जहां श्रीराम के चरणचिह्न की पूजा होती है), सुग्रीव आदि उल्लेखनीय स्थान है। रामेश्वरम् से चार मील पर मंगलातीर्थ और इसके निकट बिलुनी तीर्थ हैं। रामेश्वरम् से थोड़ी ही दूर पर जटा तीर्थ नामक कुंड है जहां किंदवती के अनुसार रामचन्द्र जी ने लंका युद्ध के पश्चात् अपने केशों का प्रक्षालन किया था। रामेश्वरम् का शायद रामपर्वत के नाम से महाभारतश् में उल्लेख है। सेतुबन्ध-रामेश्वरम तीर्थ व ज्योतिर्लिंग के आविर्भाव के सम्बन्ध में इस प्रकार बताया जाता है - मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम ने स्वयं अपने हाथों से श्री रामेश्वर ज्योतिर्लिंग की स्थापना की थी। ऐसा बताया जाता है कि श्रीराम ने जब रावण के वध हेतु लंका पर चढ़ाई की थी, तो यहाँ पहुँचने पर विजय श्री की प्राप्ति हेतु उन्होंने समुद्र के किनारे बालुका (रेत) का शिवलिंग बनाकर उसकी पूजा की थी।

11. मल्लिकार्जुन

आन्ध्र प्रदेश के कृष्णा जिले में कृष्णा नदी के तट पर श्रीशैल पर्वत पर श्रीमल्लिकार्जुन विराजमान हैं। इसे दक्षिण का कैलाश कहते हैं। अनेक धर्मग्रन्थों में इस स्थान की महिमा बतायी गई है। महाभारत के अनुसार श्रीशैल पर्वत पर भगवान शिव का पूजन करने से अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है। कुछ ग्रन्थों में तो यहाँ तक लिखा है कि श्रीशैल के शिखर के दर्शन मात्र करने से दर्शको के सभी प्रकार के कष्ट दूर भाग जाते हैं, उसे अनन्त सुखों की प्राप्ति होती है और आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाता है।

शिव पार्वती के पुत्र स्वामी कार्तिकेय और गणेश दोनों भाई विवाह के लिए आपस में कलह करने लगे। कार्तिकेय का कहना था कि वे बड़े हैं, इसलिए उनका विवाह पहले होना चाहिए, किन्तु श्री गणेश अपना विवाह पहले करना चाहते थे। इस झगड़े पर फैसला देने के लिए दोनों अपने माता-पिता भवानी और शंकर के पास पहुँचे। उनके माता-पिता ने कहा कि तुम दोनों में जो कोई इस पृथ्वी की परिक्रमा करके पहले यहाँ आ जाएगा, उसी का विवाह पहले होगा। शर्त सुनते ही कार्तिकेय जी पृथ्वी की परिक्रमा करने के लिए दौड़ पड़े। इधर स्थूलकाय श्री गणेश जी और उनका वाहन भी चूहा, भला इतनी शीघ्रता से वे परिक्रमा कैसे कर सकते थे। गणेश जी के सामने भारी समस्या उपस्थित थी। श्रीगणेश जी शरीर से जरूर स्थूल हैं, किन्तु वे बुद्ध के सागर हैं। उन्होंने कुछ सोच-विचार किया और अपनी माता पार्वती तथा पिता देवाधिदेव महेश्वर से एक आसन पर बैठने का आग्रह किया। उन दोनों के आसन पर बैठ जाने के बाद श्रीगणेश ने उनकी सात परिक्रमा की, फिर विधिवत् पूजन किया-

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रकान्तिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यं फलं भवति निश्चितम्।।

इस प्रकार श्रीगणेश माता-पिता की परिक्रमा करके पृथ्वी की परिक्रमा से प्राप्त होने वाले फल की प्राप्ति के अधिकारी बन गये। उनकी चतुर बुद्ध को देख कर शिव और पार्वती दोनों बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने श्रीगणेश का विवाह भी करा दिया। जिस समय स्वामी कार्तिकेय सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करके वापस आये, उस समय श्रीगणेश जी का विवाह विश्वरूप प्रजापति की पुत्रियों सिद्ध और बुद्ध के साथ हो चुका था। इतना ही नहीं श्री गणेशजी को उनकी 'सिद्ध' नामक पत्नी से 'क्षेम' तथा बुद्ध नामक पत्नी से 'लाभ', ये दो पुत्ररत्न भी मिल गये थे। भ्रमणशील और जगत् का कल्याण करने वाले देवर्षि नारद ने स्वामी कार्तिकेय से यह सारा वृत्तांत कहा सुनाया। श्रीगणेश का विवाह और उन्हें पुत्र लाभ का समाचार सुनकर स्वामी कार्तिकेय जल उठे। इस प्रकरण से नाराज कार्तिक ने शिष्टाचार का पालन करते हुए अपने माता-पिता के चरण छुए और वहाँ से चल दिये।

माता-पिता से अलग होकर कार्तिक स्वामी क्रौंच पर्वत पर रहने लगे। शिव और पार्वती ने अपने पुत्र कार्तिकेय को समझा-बुझाकर बुलाने हेतु देवर्षि नारद को क्रौंचपर्वत पर भेजा। देवर्षि नारद ने बहुत प्रकार से स्वामी को मनाने का प्रयास किया, किन्तु वे वापस नहीं आये। उसके बाद कोमल हृदय माता पार्वती पुत्र स्नेह में व्याकुल हो उठीं। वे भगवान शिव जी को लेकर क्रौंच पर्वत पर पहुँच गईं। इधर स्वामी कार्तिकेय को क्रौंच पर्वत अपने माता-पिता के आगमन की सूचना मिल गई और वे वहाँ से तीन योजन अर्थात् छत्तीस किलोमीटर दूर चले गये। कार्तिकेय के चले जाने पर भगवान शिव उस क्रौंच पर्वत पर ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रकट हो गये तभी से वे 'मल्लिकार्जुन' ज्योतिर्लिंग के नाम से प्रसिद्ध हुए। 'मल्लिका' माता पार्वती का नाम है, जबकि 'अर्जुन' भगवान शंकर को कहा जाता है। इस प्रकार सम्मिलित रूप से 'मल्लिकार्जुन' नाम उक्त ज्योतिर्लिंग का जगत् में प्रसिद्ध हुआ। एक अन्य कथानक के अनुसार कौंच पर्वत के समीप में ही चन्द्रगुप्त नामक किसी राजा की राजधानी थी। उनकी राजकन्या किसी संकट में उलझ गई थी। उस विपत्ति से बचने के लिए वह अपने पिता के राजमहल से भागकर पर्वतराज की शरण में पहुँच गई। वह कन्या ग्वालों के साथ कन्दमूल खाती और दूध पीती थी। इस प्रकार उसका जीवन-निर्वाह उस पर्वत पर होने लगा।

12. घुमेश्वर

महाराष्ट्र में अवस्थित एलोरा की गुफाओं में कैलास नाम की गुफा सर्वश्रेष्ठ और अति सुन्दर है। पहाड़ को काट-काटकर इस गुफा का निर्माण किया गया है। कैलास गुफा की कलाकारी दर्शकों के मन को मुग्ध कर देती है। यहाँ मात्र हिन्दू धर्मावलम्बी ही नहीं, बल्कि सभी धर्मों के लोग एलोरा की कलाओं से आकर्षित होते हैं। एलोरा की रमणीयता को देखकर उससे प्रभावित होगर बौद्ध, जैन तथा मुसलमान आदि धर्मावलाम्बियों ने भी उसकी सुरम्य पहाड़ियों पर अपने-अपने स्थान बनाये हैं। कैलास गुफा से बेहद प्रभावित एक पश्चिमी विद्वान श्यावेल ने दक्षिण भारत के सभी मन्दिरो का निर्माण-आधार (नमूना) कैलास को ही स्वीकार किया है।

कुछ ऐसे भी लोग है, जो एलोरा कैलास मन्दिर को घुश्मेश्वर का प्राचीन स्थान मानते हैं। यहाँ के अति प्राचीन स्थानों में श्री घृष्णेश्वर शिव और देवगिरि दुर्ग के मध्य में स्थित सहस्त्रलिंग, पातालेश्चर व सूर्येश्वर हैं। इसी प्रकार सूर्य कुण्ड तथा शिव कुण्ड नामक सरोवर भी अति प्राचीन हैं। इस पहाड़ी की प्राकृतिक बनावट भी कुछ ऐसी ही है, जो सबके मन को अपनी ओर खींच लेती है। शिव पुराण के ज्ञान संहिता में लिखा है -

ईकृशं चौव लिंग च दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते।
सुखं संवर्धते पुंसां शुक्लपक्षे यथा शशी।।

अर्थात् 'घुश्मेश्वर महादेव के दर्शन करने से सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उसी प्रकार सुख-समृद्ध होती है, जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की।'

श्री शिवमहापुराण में घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिंग की कथा इस प्रकार बतायी गई है - 'अद्भुत तथा नित्य परम शोभा सम्पन्न देवगिरि नामक पर्वत दक्षिण दिशा में अवस्थित है। उस पर्वत के समीप में भारद्वाज कुल में उत्पन्न एक सुधर्मा नामक ब्रह्मवेत्ता (ब्रह्म को जानने वाला) ब्राह्मण निवास करते थे। सदा शिव धर्म के पालन में तत्पर रहने वाली उनकी पत्नी का नाम सुदेहा था। वह कुशलतापूर्वक अपने घर के कार्यों को करती हुई पति की भी सब प्रकार से सेवा करती थी। ब्राह्मण श्रेष्ठ सुधर्मा भी देवताओं तथा अतिथियों के पूजक थे। वे वैदिक सनातन धर्म के नियम का अनुसरण करते हुए नित्य अग्निहोत्र करते थे। त्रिकाल सन्ध्या (सुबह, दोपहर और शामद्ध करने के कारण उनके शरीर की कान्ति सूर्य की भाँति उद्दीप्त हो रही थी। वेद शास्त्रों के मर्मज्ञ (ज्ञाता) होने के कारण वे शिष्यों को पढ़ाया भी करते थे। वे धनवान तथा दानी भी थे। वे सज्जनता तथा विविध सद्गुणों के अधिष्ठान अर्थात् पात्र थे। स्वयं शिव भक्त होने के कारण सदा शिव जी की आराधना में लगे रहते थे, तथा उन्हें शिवभक्त परम प्रिय थे। शिव भक्त भी उन्हें बड़ा प्रेम देते थे।

इतना सब कुछ होने पर भी सुधर्मा को कोई सन्तान न थी। यद्यपि उस ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण का कोई कष्ट न था, किन्तु उनकी धर्मपत्नी सुदेहा बड़ी दुरूखी रहती थी। उसके पड़ोसी तथा अन्य लोग भी उसे निःसन्तान होने का ताना मारा करते थे, जिसके कारण अपने पति से बार-बार पुत्र प्राप्ति हेतु प्रार्थना करती थी। उसके पति उस मिथ्या संसार के सम्बन्ध में उसे ज्ञान का उपदेश दिया करते थे, फिर भी उसका मन नहीं मानता था। उस ब्राह्मणदेव ने भी पुत्रप्राप्ति के लिए कुछ उपाय किये, किन्तु असफल रहे। उसके बाद अत्यन्त दुरूखी उस ब्राह्मणी ने अपनी छोटी बहन घुश्मा के साथ अपने पति का दूसरा विवाह करा दिया। सुधर्मा ने द्वितीय विवाह से पूर्व अपनी पत्नी को बहुत समझाया था कि तुम इस समय अपनी बहन से प्यार कर रही हो, इसलिए मेरा विवाह करा रही हो, किन्तु जब इसे पुत्र उत्पन्न होगा, तो तुम उससे ईर्ष्या करने लगोगी। सुदेहा ने संकल्प लिया था कि वह कभी भी अपनी बहन से ईर्ष्या नहीं करेगी।

आलेख

सक्षम गुरु से ही समझ सकते हैं शिव तत्व का रहस्य

भगवान शिव सृष्टि के आदि गुरु हैं। वह सृष्टि के पालक , संचालक और संहारक भी हैं। भगवान शिव के शिवत्व को समझना बहुत कठिन है। किसी सक्षम गुरु के बिना तो इस बारे में कुछ भी जाना नही जा सकता। शिव और उनके रहस्य दोनो ही अनंत हैं। इसीलिए जब योग की चर्चा शुरू होती है तो तत्काल सबसे पहले ध्यानमग्न शिव आंखों के सामने छा जाते हैं।

अनिता अग्रवाल

शिव तत्व का उद्देश्य केवल मोक्ष है और शिव दर्शन गुरु के बिना असंभव है। आध्यात्मिक दुनिया के अनुभव केवल गुरु के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं । शिव तत्व की प्राप्ति से पहले स्वयं की इच्छा को समझना अत्यंत आवश्यक है।

लेखिका प्रख्यात साहित्यकार, कवयित्री एवं संस्कृति पर्व की सहायक सम्पादक हैं।

सृष्टि में कुछ भी ऐसा नही है जो शिव से अतिरिक्त हो। इन सभी मे जो ऊर्जा है वही शक्ति है। इसीलिए शिव के अर्धनारीश्वर स्वरूप की परिकल्पना सनातन संस्कृति में कई गयी है। बिना शक्ति के शिव का औचित्य सिद्ध नही होता।

शिव तत्व को समझने के लिए सृष्टि को समझना जरूरी है। सनातन वांग्मय कहते हैं- यह सृष्टि 16 तत्वों से निर्मित है। पहले पांच तत्व, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, पृथ्वी लोक से संबंधित हैं। छठा तत्व 'शिव तत्व' है जिसका संबंध आज्ञा चक्र से है तथा वह माथे के केंद्र में स्थित है। विशुद्धि और आज्ञा चक्र के बीच में 11 तत्व हैं किंतु फिर भी शिव तत्व को छठा तत्व कहा जाता है क्योंकि शिव आदि, अनादि, अनंत, अखण्ड हैं जो बुद्धि की समझ से परे हैं। सारे तत्व उसी में निहित हैं।

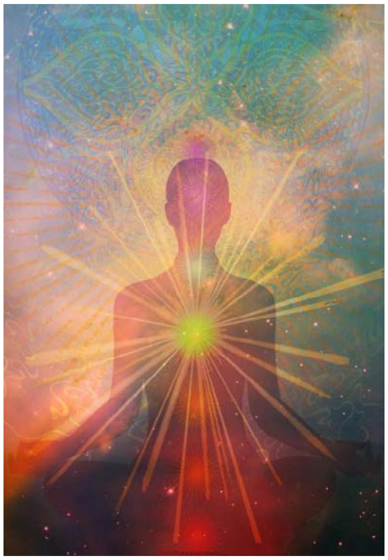

ऐसा माना जाता है कि एक सामान्य मनुष्य का मस्तिष्क 7 से 8 प्रतिशत की क्षमता पर कार्य करता है जो कि भौतिक दुनिया के अनुभवों के लिए पर्याप्त है किंतु शिव तत्व का अनुभव करने के लिए उच्च इंद्रियों की जागृति आवश्यक है। विज्ञान भी मानता है कि शरीर में तीन प्रकार की ग्रन्थियां होती हैं, ब्रह्म ग्रंथि, विष्णु ग्रंथि तथा रूद्र ग्रंथि। ब्रह्म ग्रंथि तथा विष्णु ग्रंथि खोलना अपेक्षाकृत सरल है किन्तु रूद्र ग्रंथि को खोलना बहुत कठिन है। इसके खुले बिना शेष 11 तत्वों का अनुभव नहीं हो सकता।

इस तात्विक अनुभव को भी योग और दर्शन हमें ठीक से समझाता है। सृष्टि के 16 तत्वों के अनुभव के बाद ही शिव और शक्ति का संयोजन होता है और शिव तत्व की प्राप्ति होती है। शिव तत्व का उद्देश्य केवल मोक्ष है और शिव दर्शन गुरु के बिना असंभव है। आध्यात्मिक दुनिया के अनुभव केवल गुरु के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं । शिव तत्व की प्राप्ति से पहले स्वयं की इच्छा को समझना अत्यंत आवश्यक है। क्या भोग विलास, सामाजिक प्रतिष्ठा, धन-लाभ तथा समस्याओं से निजात पाने के लिए हम गुरु ढूंढ रहे हैं या फिर बंधनों से मुक्त होने के लिए। यह प्रश्न ही अपने साथ हमारा मार्गदर्शन भी करता है। हम आखिर गुरु की तलाश किसलिए करते हैं। शिव तत्व को जो समझा सके , ऐसे गुरु की ही आवश्यकता है। वास्तव में वही गुरु है। इसी गुरु तत्व के साथ शिव तत्व को समझा जा सकता है।

भगवान शिव के पैंतीस रहस्य

डॉ. हितेश व्यास

शिव सृष्टि के ऐसे संचालक हैं जो सृष्टि के पूर्व और सृष्टि के बाद भी समानरूप से सक्रिय रहते हैं। सनातन संस्कृति में शिव की उपस्थिति प्रत्येक क्षण प्रमाणित है। भौतिक रूप से शिव एक ऐसे परिवार के मुखिया हैं जिस परिवार का प्रत्येक सदस्य पूजित है। भगवान शिव के अलावा माता पार्वती महाशक्ति के रूप में पूजी जाती हैं। उनके दोनों पुत्र गणेश और कार्तिकेय समान रूप से पूजे जाते हैं। उनका वाहन नंदी सनातन संस्कृति में अत्यंत पूज्य है। उनके सिर से निकली गंगा की एक एक बूंद अमृत है। उनके ललाट पर विद्यमान चन्द्रमा हर प्रकार से पूज्य है। उनके गले में विद्यमान सर्प की पूजा सर्वविदित है। ऐसे भगवान शिव के अनेक रहस्य हैं। सभी रहस्यों को मनुष्य के लिए जान पाना बहुत कठिन है। भगवान शिव के प्रमुख पैंतीस ऐसे रहस्य यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं जो जानने योग्य है।

भगवान शंकर की परंपरा को उनके शिष्यों बृहस्पति, विशालाक्ष (शिव), शुक्र, सहस्राक्ष, महेन्द्र, प्राचेतस मनु, भरद्वाज, अगस्त्य मुनि, गौरशिरस मुनि, नंदी, कार्तिकेय, भैरवनाथ आदि ने आगे बढ़ाया। इसके अलावा वीरभद्र, मणिभद्र, चंदिस, नंदी, श्रृंगी, भृगिरिटी, शैल, गोकर्ण, घंटाकर्ण, बाण, रावण, जय और विजय ने भी शैवपंथ का प्रचार किया।

(लेखक सुप्रसिद्ध पत्रकार हैं।)

भगवान शिव अर्थात पार्वती के पति शंकर जिन्हें महादेव, भोलेनाथ, आदिनाथ आदि कहा जाता है।

1. आदिनाथ शिव

सर्वप्रथम शिव ने ही धरती पर जीवन के प्रचार-प्रसार का प्रयास किया इसलिए उन्हें 'आदिदेव' भी कहा जाता है। 'आदि' का अर्थ प्रारंभ। आदिनाथ होने के कारण उनका एक नाम 'आदिश' भी है।

2. शिव के अस्त्र-शस्त्र

शिव का धनुष पिनाक, चक्र भवरेंदु और सुदर्शन, अस्त्र पाशुपतास्त्र और शस्त्र त्रिशूल है। उक्त सभी का उन्होंने ही निर्माण किया था।

3. भगवान शिव का नाग

शिव के गले में जो नाग लिपटा रहता है उसका नाम वासुकि है। वासुकि के बड़े भाई का नाम शेषनाग है।

4. शिव की अर्द्धांगिनी

शिव की पहली पत्नी सती ने ही अगले जन्म में पार्वती के रूप में जन्म लिया और वही उमा, उर्मि, काली कही गई हैं।

5. शिव के पुत्र

शिव के प्रमुख 6 पुत्र हैं- गणेश, कार्तिकेय, सुकेश, जलंधर, अयप्पा और भूमा। सभी के जन्म की कथा रोचक है।

6. शिव के शिष्य

शिव के 7 शिष्य हैं जिन्हें प्रारंभिक सप्तऋषि माना गया है। इन ऋषियों ने ही शिव के

ज्ञान को संपूर्ण धरती पर प्रचारित किया जिसके चलते भिन्न-भिन्न धर्म और संस्कृतियों की उत्पत्ति हुई। शिव ने ही गुरु और शिष्य परंपरा की शुरुआत की थी। शिव के शिष्य हैं- बृहस्पति, विशालाक्ष, शुक्र, सहस्राक्ष, महेन्द्र, प्राचेतस मनु, भरद्वाज इसके अलावा 8वें गौरशिरस मुनि भी थे।

7. शिव के गण

शिव के गणों में भैरव, वीरभद्र, मणिभद्र, चंदिस, नंदी, श्रृंगी, भृगिरिटी, शैल, गोकर्ण, घंटाकर्ण, जय और विजय प्रमुख हैं। इसके अलावा, पिशाच, दैत्य और नाग-नागिन, पशुओं को भी शिव का गण माना जाता है।

8. शिव पंचायत

भगवान सूर्य, गणपति, देवी, रुद्र और विष्णु ये शिव पंचायत कहलाते हैं।

9. शिव के द्वारपाल

नंदी, स्कंद, रिटी, वृषभ, भृंगी, गणेश, उमा-महेश्वर और महाकाल।

10. शिव पार्षद

जिस तरह जय और विजय विष्णु के पार्षद हैं उसी तरह बाण, रावण, चंड, नंदी, भृंगी आदि शिव के पार्षद हैं।

11. सभी धर्मों का केंद्र शिव

शिव की वेशभूषा ऐसी है कि प्रत्येक धर्म के लोग उनमें अपने प्रतीक ढूंढ सकते हैं। मुशरिक, यजीदी, साबिईन, सुबी, इब्राहीमी धर्मों में शिव के होने की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। शिव के शिष्यों से एक ऐसी परंपरा की शुरुआत हुई, जो आगे चलकर शैव, सिद्ध, नाथ, दिगंबर और सूफी संप्रदाय में विभक्त हो गई।

12. शंकर ही बुद्ध

बौद्ध साहित्य के मर्मज्ञ अंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान प्रोफेसर उपासक का मानना है कि शंकर ने ही बुद्ध के रूप में जन्म लिया था। उन्होंने पालि ग्रंथों में वर्णित 27 बुद्धों का उल्लेख करते हुए बताया कि इनमें बुद्ध के 3 नाम अतिप्राचीन हैं- तणंकर, शणंकर और मेघंकर।

13. देवता और असुर दोनों के प्रिय शिव

भगवान शिव को देवों के साथ असुर, दानव, राक्षस, पिशाच, गंधर्व, यक्ष आदि सभी पूजते हैं। वे रावण को भी वरदान देते हैं और राम को भी। उन्होंने भस्मासुर, शुक्राचार्य आदि कई असुरों को वरदान दिया था। शिव, सभी आदिवासी, वनवासी जाति, वर्ण, धर्म और समाज के सर्वोच्च देवता हैं।

14. शिव चिह्न

वनवासी से लेकर सभी साधारण व्यक्ति जिस चिह्न की पूजा कर सकें, उस पत्थर के ढेले, बटिया को शिव का चिह्न माना जाता है। इसके अलावा रुद्राक्ष और त्रिशूल को भी शिव का चिह्न माना गया है। कुछ लोग डमरू और अर्द्ध चन्द्र को भी शिव का चिह्न मानते हैं, हालांकि ज्यादातर लोग शिवलिंग अर्थात शिव की ज्योति का पूजन करते हैं।

15. शिव की गुफा

शिव ने भस्मासुर से बचने के लिए एक पहाड़ी में अपने त्रिशूल से एक गुफा बनाई और वे फिर उसी गुफा में छिप गए। वह गुफा जम्मू से 150 किलोमीटर दूर त्रिकूटा की पहाड़ियों पर है। दूसरी ओर भगवान शिव ने जहां पार्वती को अमृत ज्ञान दिया था वह गुफा 'अमरनाथ गुफा' के नाम से प्रसिद्ध है।

16. शिव के पैरों के निशान

श्रीपद- श्रीलंका में रतन द्वीप पहाड़ की चोटी पर स्थित श्रीपद नामक मंदिर में शिव के पैरों के निशान हैं। ये पदचिह्न 5 फुट 7 इंच लंबे और 2 फुट 6 इंच चौड़े हैं। इस स्थान को सिवानोलीपदम कहते हैं। कुछ लोग इसे आदम पीक कहते हैं।

रुद्र पद- तमिलनाडु के नागपट्टीनम जिले के थिरुवेंगडू क्षेत्र में श्रीस्वेदारण्येश्वर का मंदिर में शिव के पदचिह्न हैं जिसे 'रुद्र पदम' कहा जाता है। इसके अलावा थिरुवन्नामलाई में भी एक स्थान पर शिव के पदचिह्न हैं।

तेजपुर- असम के तेजपुर में ब्रह्मपुत्र नदी के पास स्थित रुद्रपद मंदिर में शिव के दाएं पैर का निशान है।

जागेश्वर- उत्तराखंड के अल्मोड़ा से 36 किलोमीटर दूर जागेश्वर मंदिर की पहाड़ी से लगभग साढ़े 4 किलोमीटर दूर जंगल में भीम के पास शिव के पदचिह्न हैं। पांडवों को दर्शन देने से बचने के लिए उन्होंने अपना एक पैर यहां और दूसरा कैलाश में रखा था।

रांची- झारखंड के रांची रेलवे स्टेशन से 7 किलोमीटर की दूरी पर 'रांची हिल' पर शिवजी के पैरों के निशान हैं। इस स्थान को 'पहाड़ी बाबा मंदिर' कहा जाता है।

17. शिव के अवतार

वीरभद्र, पिप्पलाद, नंदी, भैरव, महेश, अश्वत्थामा, शरभावतार, गृहपति, दुर्वासा, हनुमान, वृषभ, यतिनाथ, कृष्णदर्शन, अवधूत, भिक्षुवर्य, सुरेश्वर, किरात, सुनटनर्तक, ब्रह्मचारी, यक्ष, वैश्यानाथ, द्विजेश्वर, हंसरूप, द्विज, नतेश्वर आदि हुए हैं। वेदों में रुद्रों का जिक्र है। रुद्र 11 बताए जाते हैं- कपाली, पिंगल, भीम, विरुपाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजपाद, आपिर्बुध्य, शंभू, चण्ड तथा भव।

18. शिव का विरोधाभासिक परिवार

शिवपुत्र कार्तिकेय का वाहन मयूर है, जबकि शिव के गले में वासुकि नाग है। स्वभाव से मयूर और नाग आपस में दुश्मन हैं। इधर गणपति का वाहन चूहा है, जबकि सांप मूषकभक्षी जीव है। पार्वती का वाहन शेर है, लेकिन शिवजी का वाहन तो नंदी बैल है। इस विरोधाभास या वैचारिक भिन्नता के बावजूद परिवार में एकता है।

19. कैलाश पर्वत पर निवास

तिब्बत स्थित कैलाश पर्वत पर उनका निवास है। जहां पर शिव विराजमान हैं उस पर्वत के ठीक नीचे पाताल लोक है जो भगवान विष्णु का स्थान है। शिव के आसन के ऊपर वायुमंडल के पार क्रमशः स्वर्ग लोक और फिर ब्रह्माजी का स्थान है।

20.शिव भक्त

ब्रह्मा, विष्णु और सभी देवी-देवताओं सहित भगवान राम और कृष्ण भी शिव भक्त है। हरिवंश पुराण के अनुसार, कैलास पर्वत पर कृष्ण ने शिव को प्रसन्न करने के लिए तपस्या की थी। भगवान राम ने रामेश्वरम में शिवलिंग स्थापित कर उनकी पूजा-अर्चना की थी।

21.शिव ध्यान

शिव की भक्ति हेतु शिव का ध्यान-पूजन किया जाता है। शिवलिंग को बिल्वपत्र चढ़ाकर शिवलिंग के समीप मंत्र जाप या ध्यान करने से मोक्ष का मार्ग पुष्ट होता है।

22.शिव मंत्र

दो ही शिव के मंत्र हैं पहला- ॐ नमः शिवाय। दूसरा महामृत्युंजय मंत्र- ॐ ह्रौं जू सः। ॐ भूः भुवः स्वः। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्। स्वः भुवः भूः ॐ। सः जू ह्रौं ॐ ॥ है।

23.शिव व्रत और त्योहार

सोमवार, प्रदोष और श्रावण मास में शिव व्रत रखे जाते हैं। शिवरात्रि और महाशिवरात्रि शिव का प्रमुख पर्व त्योहार है।

24.शिव प्रचारक

भगवान शंकर की परंपरा को उनके शिष्यों बृहस्पति, विशालाक्ष (शिव), शुक्र, सहस्राक्ष, महेन्द्र, प्राचेतस मनु, भरद्वाज, अगस्त्य मुनि, गौरशिरस मुनि, नंदी, कार्तिकेय, भैरवनाथ आदि ने आगे बढ़ाया। इसके अलावा वीरभद्र, मणिभद्र, चंदिस, नंदी, श्रृंगी, भृगिरिटी, शैल, गोकर्ण, घंटाकर्ण, बाण, रावण, जय और विजय ने भी शैवपंथ का प्रचार किया। इस परंपरा में सबसे बड़ा नाम आदिगुरु भगवान दत्तात्रेय का आता है। दत्तात्रेय के बाद आदि शंकराचार्य, मत्स्येन्द्रनाथ और गुरु गुरुगोरखनाथ का नाम प्रमुखता से लिया जाता है।

25.शिव महिमा

शिव ने कालकूट नामक विष पिया था जो अमृत मंथन के दौरान निकला था। शिव ने भस्मासुर जैसे कई असुरों को वरदान दिया था। शिव ने कामदेव को भस्म कर दिया था। शिव ने गणेश और राजा दक्ष के सिर को जोड़ दिया था। ब्रह्मा द्वारा छल किए जाने पर शिव ने ब्रह्मा का पांचवां सिर काट दिया था।

26.शैव परम्परा

दसनामी, शाक्त, सिद्ध, दिगंबर, नाथ, लिंगायत, तमिल शैव, कालमुख शैव, कश्मीरी शैव, वीरशैव, नाग, लकुलीश, पाशुपत, कापालिक, कालदमन और महेश्वर सभी शैव परंपरा से हैं। चंद्रवंशी, सूर्यवंशी, अग्निवंशी और नागवंशी भी शिव की परंपरा से ही माने जाते हैं। भारत की असुर, रक्ष और आदिवासी जाति के आराध्य देव शिव ही हैं। शैव धर्म भारत के आदिवासियों का धर्म है।

27.शिव के प्रमुख नाम

शिव के वैसे तो अनेक नाम हैं जिनमें 108 नामों का उल्लेख पुराणों में मिलता है लेकिन यहां प्रचलित नाम जानें- महेश, नीलकंठ, महादेव, महाकाल, शंकर, पशुपतिनाथ, गंगाधर, नटराज, त्रिनेत्र, भोलेनाथ, आदिदेव, आदिनाथ, त्रियंबक, त्रिलोकेश, जटाशंकर, जगदीश, प्रलयंकर, विश्वनाथ, विश्वेश्वर, हर, शिवशंभु, भूतनाथ और रुद्र।

28.अमरनाथ के अमृत वचन

शिव ने अपनी अर्धांगिनी पार्वती को मोक्ष हेतु अमरनाथ की गुफा में जो ज्ञान दिया उस ज्ञान की आज अनेकानेक शाखाएं हो चली हैं। वह ज्ञानयोग और तंत्र के मूल सूत्रों में शामिल है। 'विज्ञान भैरव तंत्र' एक ऐसा ग्रंथ है, जिसमें भगवान शिव द्वारा पार्वती को बताए गए 112 ध्यान सूत्रों का संकलन है।

29.शिव ग्रंथ

वेद और उपनिषद सहित विज्ञान भैरव तंत्र, शिव पुराण और शिव संहिता में शिव की संपूर्ण शिक्षा और दीक्षा समाई हुई है। तंत्र के अनेक ग्रंथों में उनकी शिक्षा का विस्तार हुआ है।

30.शिवलिंग

वायु पुराण के अनुसार प्रलयकाल में समस्त सृष्टि जिसमें लीन हो जाती है और पुनः सृष्टिकाल में जिससे प्रकट होती है, उसे लिंग कहते हैं। इस प्रकार विश्व की संपूर्ण ऊर्जा ही लिंग की प्रतीक है। वस्तुतः यह संपूर्ण सृष्टि बिंदु-नाद स्वरूप है। बिंदु शक्ति है और नाद शिव। बिंदु अर्थात ऊर्जा और नाद अर्थात ध्वनि। यही दो संपूर्ण ब्रह्मांड का आधार है। इसी कारण प्रतीक स्वरूप शिवलिंग की पूजा-अर्चना है।

31.बारह ज्योतिर्लिंग

सोमनाथ, मल्लिकार्जुन, महाकालेश्वर, ॐकारेश्वर, वैद्यनाथ, भीमशंकर, रामेश्वर, नागेश्वर, विश्वनाथजी, त्र्यम्बकेश्वर, केदारनाथ, घृष्णेश्वर। ज्योतिर्लिंग उत्पत्ति के संबंध में अनेकों मान्यताएं प्रचलित है। ज्योतिर्लिंग यानी 'व्यापक ब्रह्मात्मलिंग' जिसका अर्थ है 'व्यापक प्रकाश'। जो शिवलिंग के बारह खंड हैं। शिवपुराण के अनुसार ब्रह्म, माया, जीव, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी को ज्योतिर्लिंग या ज्योति पिंड कहा गया है।

दूसरी मान्यता अनुसार शिव पुराण के अनुसार प्राचीनकाल में आकाश से ज्योति पिंड पृथ्वी पर गिरे और उनसे थोड़ी देर के लिए प्रकाश फैल गया। इस तरह के अनेकों उल्का पिंड आकाश से धरती पर गिरे थे। भारत में गिरे अनेकों पिंडों में से प्रमुख बारह पिंड को ही ज्योतिर्लिंग में शामिल किया गया।

32.शिव का दर्शन

शिव के जीवन और दर्शन को जो लोग यथार्थ दृष्टि से देखते हैं वे सही बुद्धि वाले और यथार्थ को पकड़ने वाले शिवभक्त हैं, क्योंकि शिव का दर्शन कहता है कि यथार्थ में जियो, वर्तमान में जियो, अपनी चित्तवृत्तियों से लड़ो मत, उन्हें अजनबी बनकर देखो और कल्पना का भी यथार्थ के लिए उपयोग करो। आइंस्टीन से पूर्व शिव ने ही कहा था कि कल्पना ज्ञान से ज्यादा महत्वपूर्ण है।

33.शिव और शंकर

शिव का नाम शंकर के साथ जोड़ा जाता है। लोग कहते हैं- शिव, शंकर, भोलेनाथ। इस तरह अनजाने ही कई लोग शिव और शंकर को एक ही सत्ता के दो नाम बताते हैं। असल में, दोनों की प्रतिमाएं अलग-अलग आकृति की हैं। शंकर को हमेशा तपस्वी रूप में दिखाया जाता है। कई जगह तो शंकर को शिवलिंग का ध्यान करते हुए दिखाया गया है। अतः शिव और शंकर दो अलग अलग सत्ताएं है। हालांकि शंकर को भी शिवरूप माना गया है। माना जाता है कि महेष (नंदी) और महाकाल भगवान शंकर के द्वारपाल हैं। रुद्र देवता शंकर की पंचायत के सदस्य हैं।

34. देवों के देव महादेव

देवताओं की दैत्यों से प्रतिस्पर्धा चलती रहती थी। ऐसे में जब भी देवताओं पर घोर संकट आता था तो वे सभी देवाधिदेव महादेव के पास जाते थे। दैत्यों, राक्षसों सहित देवताओं ने भी शिव को कई बार चुनौती दी, लेकिन वे सभी परास्त होकर शिव के समक्ष झुक गए इसीलिए शिव हैं देवों के देव महादेव। वे दैत्यों, दानवों और भूतों के भी प्रिय भगवान हैं। वे राम को भी वरदान देते हैं और रावण को भी।

35. शिव हर काल में

भगवान शिव ने हर काल में लोगों को दर्शन दिए हैं। राम के समय भी शिव थे। महाभारत काल में भी शिव थे और विक्रमादित्य के काल में भी शिव के दर्शन होने का उल्लेख मिलता है। भविष्य पुराण अनुसार राजा हर्षवर्धन को भी भगवान शिव ने दर्शन दिए थे।

उपमन्यु की तपस्या फल

कैप्टन सुभाष ओझा

व्याघ्रवाद सुतो धीमान्पमन्यु सतां प्रियः।
जन्मान्तरेण संसिद्धः प्राप्तो मुनिकुमारताम्।।
नन्दीश्वर ने कहा - हे तात् परमेश्वर शिव का जो सुरेश्वरावतार हुआ, जिसने धौम्य के ज्येष्ठ भ्राता (उपमन्यु) का हित साधन किया था। व्याघ्रपाद के उपमन्यु नाम का एक पुत्र था जो परम बुद्धिमान एवं सज्जनों का प्रिय था, वह तपस्या से सिद्ध था और मुनि के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ था।

वह व्याघ्रपाद पुत्र उपमन्यु जब बालक था तभी से अपनी माता के साथ मामा के घर निवास करने लगा। माता से दूध मॉंगने पर बालक उपमन्यु को कृत्रिम दूध मिला, बालक ने दूध पीकर कहा कि 'यह दूध नहीं है' इस प्रकार माता से बोला और पुनः रोने लगा। माता बोली- हे पुत्र! हम तो सदैव वन में रहते हैं। अतः यहॉं दूध की प्राप्ति कैसे सम्भव है।

हे पुत्र! पूर्वजन्म में शिव जी को उद्देश्य करके जो कर्म किया जाता है वह उसे अवश्य प्राप्त होता है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए।

वह व्याघ्रपाद पुत्र शोकरहित होकर अपनी माता से बोला हे मातः यदि शिव जी कल्याण करने वाले हैं तो शोक करना व्यर्थ है। यदि कहीं भी वे महादेव जी होंगे तो मैं थोड़े अथवा अधिक काल में उनसे क्षीर समुद्र प्राप्त कर लूॅंगा।

वह बालक माता को भली-भॉंति प्रणाम कर उनसे विदा ले तप करने के लिए चल पड़ा। वह हिमालय पर्वत पर जाकर वायु का पान करते हुए, मिट्टी का शिवलिंग स्थापित करके भक्तिपूर्वक पंचाक्षर मन्त्र के द्वारा पार्वती सहित शिव का आवाहन कर वन में उत्पन्न पत्र, पुष्प आदि से उनका पूजन करने लगा। उसने बहुत काल पर्यन्त घोर तप किया। भगवान शिव ने भक्ति की परीक्षा के लिए इन्द्र का रूप धारण किया। शिव परिवार ने इन्द्र परिवार का रूप धारित किया और उपमन्यु के ऊपर अनुग्रह के लिए शीघ्र आश्रम गये।

सुरेश्वर बोले- हे सुव्रत! मैं तुम्हारी इस तपस्या से अत्यन्त प्रसन्न हूॅं, तुम वर मॉंगों। मैं तुम्हारा सारा अभीष्ट प्रदान करूॅंगा, इसमें संशय नहीं है। इन्द्र रूपधारी उन शिवजी के कहने पर उसने हाथ जोड़कर कहा- मैं शिव में भक्ति होने का वरदान चाहता हूॅं।

यह सुनकर इन्द्र बोले- मुझ इन्द्र को नहीं पहचानते हो, तुम मेरे भक्त हो जाओ मे। तुम्हारा सब प्रकार का कल्याण करूॅंगा। तुम गुणरहित शिव को छोड़ो, जो देव जाति से बाहर होकर पिशाच्तव को प्राप्त हो गये हैं।

उपमन्यु बोले- शिव निन्दा में रत तुमने इस प्रकार प्रसंगवश उन देवाधिदेव को निर्गुण एवं पिशाच कहा है। तुम अवश्य ही प्रकृति से परे देवों के देव ईश्वर रूद्र को नहीं जानते।

ब्रह्मावादी लोग जिन्हें सत, असत्, व्यक्त अव्यक्त, नित्य, एक तथा अनेक बताते हैं मैं उन्हीं से वर मागॅूंगा तत्वज्ञ लोग जिन्हें तर्क से परे तथा सांख्ययोग के तात्पर्यार्थ को देने वाला मानते हैं। विभू शम्भू से परे कोई तत्व नहीं है। वे सभी कारणों के कारण और गुणों से सर्वथा परे हैं मैं किसी देवता से वर नहीं मागॅूंगा, शंकर जी ही मुझे वर प्रदान करेंगे।

“ब्रह्मावादी लोग जिन्हें सत, असत्, व्यक्त अव्यक्त, नित्य, एक तथा अनेक बताते हैं मैं उन्हीं से वर मागॅूंगा तत्वज्ञ लोग जिन्हें तर्क से परे तथा सांख्ययोग के तात्पर्यार्थ को देने वाला मानते हैं। विभू शम्भू से परे कोई तत्व नहीं है। वे सभी कारणों के कारण और गुणों से सर्वथा परे हैं मैं किसी देवता से वर नहीं मागॅूंगा, शंकर जी ही मुझे वर प्रदान करेंगे।”

हे इन्द्र! आप मेरा अभिप्राय सुनें। मैंने आज अनुमान कर लिया है कि मैंने जन्मान्तर में

(लेखक उच्च न्यायालय लखनऊ पीठ में अधिवक्ता एवं राष्ट्रवादी चिंतक हैं।)

अवश्य कोई पाप किया है जिससे मुझे शिव जी की निन्दा सुननी पड़ी।

हे सुराधम्! अब तो मैं शिवास्त्र से तुम्हारा वधकर अपना शरीर त्याग दूँगा। ऐसा करके इन्द्र को मारने के लिए उद्यत हो गये तब अग्निहोत्र से भस्म लेकर उसे अघोरास्त्र से अभिमंत्रित करके इन्द्र के ऊपर उस भस्म को छोड़कर मुनि धार शब्द किया। उसके बाद अपने शिव को स्मरण करके अग्नि में धारण करते हुए उपमन्यु स्थित हो गये।

ब्राहम्ण उपमन्यु के इतना कर लेने पर शिवजी ने सौम्य (तेज) के द्वारा महायोगी के आग्नेयी धारणा को रोक दिया।

शिव जी के आदेश से अघोरास्त्र को नन्दी ने पकड़ लिया। तद्नन्तर भगवान परमेश्वर ने उन ब्राहम्ण के समक्ष मस्तक पर द्वितीया का चन्द्र धारण किया हुआ अपना स्वरूप प्रकट किया।

सर्वसमर्थ प्रभू ने हजारों दूध के, हजारों दही आदि के भक्ष्य भोज्य पदार्थों के समुद्र दिखाये। पार्वती जी के साथ नन्दी पर सवार होकर समस्त आयुधों को धारण किया। स्वरूप का दर्शन कराया। उपमन्यु आनन्द सागर से उठी हुई लहरों में घिर गये।

शिवजी को दण्डवत् प्रणाम किये। भगवान शिवजी ने मुस्कराकर उपमन्यु को 'आओ-आओ' इस प्रकार बुलाकर उनका मस्तक सूघंकर उन्हें वर प्रदान किये।

शिव जी बोले- हे वत्स! अब मैंने परीक्षा कर ली कि तुम हमारे दृढ भक्त हो। तुम्हारी मुझमें इसी प्रकार भक्ति बनी रहेगी। तुम्हारे सभी दुःख दूर हो जायेंगे और तुम सुखी रहोगे। अब तुम सर्वदा अपने भाई बन्धुओं सहित स्वेच्छापूर्वक भक्ष्यादि भोगों का भोग करो।

हे महा भाग्यवान उपमन्यु! ये पार्वती तुम्हारी माता हैं, मैंने आज से तुम्हें अपना पुत्र मान लिया। तुम सर्वदा कुमार बने रहोगे।

हे महामुने! मैंने प्रसन्न होकर दूध, दही, घी एवं मधु के हजारों समुद्र तुमको प्रदान किये।

मैं तुमको अमरत्व तथा शाश्वत गाणपत्य भी प्रदान करता हूँ। तुम अजर, अमर, दुःख से रहित, यशस्वी, परम तेजस्वी, दिव्य ज्ञानी तथा महाप्रभू हो जाओ।

शिवजी ने घोर तप का स्मरण करके मुनि उपमन्यु को दस दिव्य वरदान दिया। पाशुपत व्रत, पाशुपात ज्ञान, व्रतयोग, भाषण-अभिक्षमता, दक्षता तथा अपना पद भी प्रदान किया। इस प्रकार वरदान देकर उन्हें अपने दोनों हाथों से पकड़कर उनका मस्तक सूघकर 'यह तुम्हारा पुत्र है' ऐसा कहकर महादेव जी ने उन्हें पार्वती को समर्पित कर दिया। यह सुनकर उनके सिरपर प्रेमपूर्वक अपना कर कमल रखकर उन्हें अक्षय कुमार पद प्रदान किया।

दूध का स्वाद उत्पन्न करने वाले समुद्र ने स्वयं उठकर क्षीर समुद्र उन्हें प्रदान किया। सन्तुष्ट चित्त- महेश्वर ने योगैश्वर्य, सदा-सन्तुष्टता अनश्वर, ब्रहम विद्या तथा परम समृद्धि उन्हें प्रदान किया।

उपमन्यु ने महादेव से प्रीतीपूर्वक वर मांगा हे परमेश्वर- प्रसन्न हो अपनी दिव्य पान तथा चिर स्थायिनी भक्ति प्रदान कीजिए।

शिव जी बोले- हे वत्स तुम सर्वदा अजर, अमर, दुःख रहित, सर्वपूज्य, निर्विकार और भक्तों में श्रेष्ठ हो जाओ। हे द्विजोत्तम-तुम्हारे बान्धव, तुम्हारा गोत्र एवं कुल अक्षय बना रहेगा।

हे मुने- तुम्हारे आश्रम में नित्य निवास करूँगा। हे वत्स तुम इच्छानुसार जब तक चाहो, तब तक इस लोक में निवास करो तुम सर्वदा पूर्ण काम रहोगे।

इस प्रकार शिव जी ने कहा तुम गणेश और कार्तिकेय के साथ तीसरे पुत्र का स्थान प्राप्त करोगे।

उपमन्यु शिव जी से श्रेष्ठ वर प्राप्त करके अपनी माता के समीप गये और समस्त वृतान्त माता से बताया। उसे सुनकर माता परम हर्षित हुई। उपमन्यु सभी के पूज्य हुए और सदा अधिकाधिक सुख प्राप्त करने लगे।

हे तात्! ठस प्रकार मैनें परमात्मा शिव के सुरेश्वरावतार का वर्णन कर दिया जो सज्जनों को सदा सुख प्रदान करने वाला है।

यह आख्यान निष्पाप, सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाला, स्वर्ग देने वाला, यश बढ़ाने वाला, आयु की वृद्धि करने वाला तथा सज्जनों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है।

इस वर्णन को जो पढ़ेगा, सुनेगा, कहेगा उसकी समस्त मनोकामना पूर्ण होगी और मोक्ष को प्राप्त करेगा।

शिव से जुड़े प्रतीकों के वास्तविक अर्थ

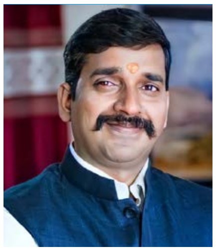

कमलेश कमल

सनातन संस्कृति में प्रतीकों का अत्यधिक महत्त्व है। सूर्य की किरणों में 7 रंग (VIBGYOR) सन्निहित हैं..इसे समझाने के लिए अनुसंधानमति आर्ष ऋषियों ने कहा कि सूरज 7 घोड़ों वाले रथ में बैठकर आता है। ठीक इसी तरह हमें सनातन संस्कृति को समझने के लिए सम्यक् रूप से प्रतीकों को समझना होगा, अन्यथा हम अर्थ का अनर्थ निकालते रहेंगे। उदाहरण के लिए, शिवालय (शिव के घर) में शिवलिंग (शिव की पहचान) पर जल, बेलपत्र आदि चढ़ाते समय हमें इस पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि शिवलिंग क्या है और हम यह क्या कर रहे हैं? आइए, शिवलिंग को देखते हैं- संस्कृत में शिव का अर्थ शुभ या कल्याणकारी है और लिंग शब्द का अर्थ है पहचान!

> **व्रत का शाब्दिक अर्थ संकल्प है, अर्थात् कल्याणकारी परमात्मा के साथ का संकल्प, सन्निधि का संकल्प। इसी तरह 'उपवास' का अर्थ भी है, प्रभु के पास बैठना। अब व्रत या उपवास में भोजन नहीं करना तो बस शरीर की शुद्धि का हेतु है। ऐसा इसलिए भी है कि साधना का आहार से अत्यंत गहरा संबंध है।**

स्त्रीलिंग कहने से स्त्री की पहचान होती है, क्योंकि उसमें स्त्रियोचित लक्षण होते हैं। पुंलिङ्ग कहने से पुरुष की पहचान होती है,क्योंकि उसमें पुरुषोचित लक्षण पाए जाते हैं। उभयलिंग कहने से ही पता चल जाता है कि उसमें स्त्री और पुरुष दोनों के लक्षण होंगे। इसी तरह, शिवलिंग शिव की पहचान है, या इसमें कल्याणकारी लक्षण हैं।

अब, कुछ मूढमति लोगों ने इसे ऐसे समझा कि परमब्रह्म शिव निराकार नहीं, कोई साकार व्यक्ति हैं और लिंग उनकी जननेन्द्रिय है...यह तो उनकी सोच की बलिहारी है।

वस्तुतः, पुरातन काल से चले आ रहे शब्द (अभिधान) व्युत्पत्ति गत रूप में अपने अर्थ (अभिधेय) को ही व्यंजित करते प्रतीत होते हैं अथवा कम से कम ये व्यवहारार्थ कल्पित होते हैं।

जब बात गूढ धार्मिक मान्यताओं और प्रतीकों की हो तो स्थूल आँखों से देखना पर्याप्त

(लेखक केन्द्रीय सुरक्षा बल में अधिकारी, भाषा विज्ञानी एवं राष्ट्रवादी साहित्यकार हैं।)

नहीं, वहाँ तो ज्ञान की आँखें चाहिए। गीता में तभी तो कहा गया है- ₹विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुशः !₹

तो, ज्ञानचक्षुओं से देखने पर स्पष्ट परिलक्षित होता है कि शिवलिंग 'शिव' यानी परमात्मा का प्रतीक है। उस पर चंदन-लेपित तीन रेखाओं से त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) व्यंजित होते हैं। इन तीन रेखाओं के मध्य में जो एक बिंदुनुमा आकृति बनाई जाती है, वह ज्योतिस्वरूप निराकार परमात्मा को व्यंजित करता है। बिंदु से क्यों? बिंदु में कोई लंबाई, चौड़ाई या ऊँचाई नहीं होती तो यह निराकार, ज्योतिस्वरूप ईश्वर को व्यंजित करने का हेतु बना।

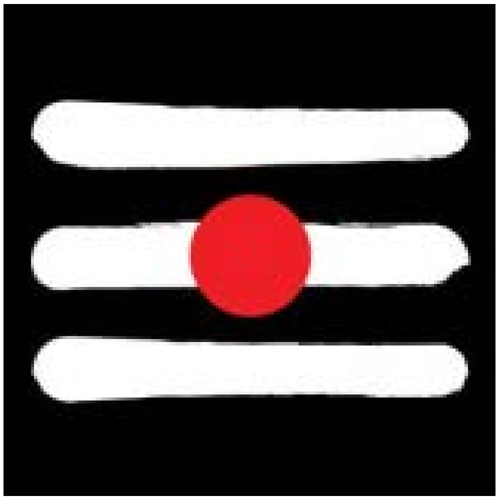

व्रत का शाब्दिक अर्थ संकल्प है, अर्थात् कल्याणकारी परमात्मा के साथ का संकल्प, सन्निधि का संकल्प। इसी तरह 'उपवास' का अर्थ भी है, प्रभु के पास बैठना। अब व्रत या उपवास में भोजन नहीं करना तो बस शरीर की शुद्धि का हेतु है। ऐसा इसलिए भी है कि साधना का आहार से अत्यंत गहरा संबंध है। साधना तभी सफलीभूत होगी जब आहार शुद्ध एवं सात्त्विक हो और उसमें आहार के चार दोषों (स्वरूप-दोष, संग- दोष, निमित्त-दोष या अर्थ-दोष) में से कोई दोष न हो। इस तरह हम कह सकते हैं कि व्रत या उपवास में भूखा रहना अनिवार्य नहीं है, बस प्रभु के कल्याणकारी रूप का स्मरण अनिवार्य है ।

हम समझ सकते हैं कि शिवरात्रि कल्याण की रात्रि है...अपने शिवत्व के जागरण की रात्रि है। इस जागरण के लिए सबसे पहले साधन, व्रत, नियम, उपवास, प्रवचन, संत-सन्निधि आदि से अन्तःकरण की शुद्धि हो जाती है। ऐसा होने से ही तो जागरण होगा। अपने शिवत्व का जागरण की बात जब हम कहते हैं तब यह अंतर्निहित है कि हम भी शिव के ही अंश हैं, हम भी अविनाशी (जिसका विनाश न हो) ही हैं। आत्मा चूँकि ऊर्जा है, तो उसका नाश होगा नहीं, इसलिए अविनाशी। वेद में कहा भी गया है- ₹ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः !₹ अर्थात् वह मेरा ही अंशी है, मुझसे भिन्न नहीं है। वे परम् आत्मा हैं और हम आत्मा हैं। ऐसे में दिव्यगुणों से अनुप्राणित होकर हम देवात्मा तो हो ही सकते हैं। कहा भी गया है कि मनुष्य देवता और राक्षस के बीच का पुल है...ऊपर उठ जाए तो देवता और नीचे गिर जाए तो राक्षस !

अभी तो बस हमारे शरीर में प्राण है, इसलिए हम प्राणी हैं। प्राण निकले, निर्वाण हो उससे पहले दिव्यगुणों से भरकर दिव्यप्राणी या दिव्यता से भरकर 'देवता' हो सकते हैं।

जब ऐसा हो जाता है, तब जीवन मधुर हो जाता है, क्लेश और संताप मिट जाते हैं..और जब संताप मिट जाते हैं, तो आनंद का उद्रेक आता है। हम नंदित हो जाते हैं, नंदी हो जाते हैं। नंदी को शिव की सवारी जब हम कहते हैं तो उसका प्रतीकात्मक अर्थ है- शिव अर्थात् सर्वकल्याणकारी सत्ता की सवारी। इसलिए तो शिव को नंदीश्वर अर्थात् 'आनंद का ईश्वर' कहा गया है, 'बैल का ईश्वर' नहीं। अतः, नंदी बैल को देखकर हमें इस प्रतीक व्यवस्था को समझना चाहिए।

इसी तरह शिव से जुड़े सभी प्रतीकों को समझने की आवश्यकता है। त्रिशूल हमारी त्रिगुणात्मक (सत्त्व, रजस, तमस) प्रकृति है जो एक दंड पर साधित रहती है। भूत-गण कुछ नहीं, अपितु काम क्रोध, लोभ, मद और मोह के पंच-भूत हैं जिन्हें उचित ही विकराल रूप दिया गया है। ये पंचभूत प्रतीकों में सौम्य रूप पा ही नहीं सकते। जो धतूरा हम अर्पित करते हैं, वह अपने अंदर के विषैले तत्त्व को अर्पित कर देने का व्यंजक है, जिससे जीवन में मधुरता आए। कहा भी गया है- ₹मधुरातायते मधुरक्षरन्ति सैंधवा।₹

जहाँ तक भाँग का प्रश्न है तो यह परम्-सत्ता के प्राकट्य का मौज है। जब सर्वव्यापक, सर्वसमर्थ, सर्वज्ञानी, सर्वशक्तिमान्, अच्युत, अखंड, रसप्रद, सुखरूप, आनंदस्वरूप, विपत्तिभंजक, अघनाशक, दुःखहर्ता, सुखकर्ता, मंगलमूरत, करुनानिधान, पतितपावन भगवान् शिव (आशुतोष) की भक्ति होती है, तो वे जल्द (आशु) ही प्रसन्न (तुष्ट) हो जाते हैं, इसलिए महाशिवरात्रि की इतनी महिमा है। आइए, उस कल्याणकारी परमात्मा (शिव) का स्मरण करें अपने अंदर के शिवत्व का जागरण करें।

आलेख

श्रावणीकर्म

डॉ. आराधना उपाध्याय

श्रावण मास और इसमें श्रावणी कर्म मनुष्य के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। आधुनिक जीवनशैली में लोग इतने महत्वपूर्ण कर्म को भूल से गए हैं। लेकिन श्रावणीकर्म के बिना जीवन का सार समझा नहीं जा सकता। सृष्टि में गुण और कर्म के अनुसार सर्जना हुयी है। सुनार की हथौड़ी और लुहार की हथौड़ी कदापि एक सी नहीं हो सकती। यदि हो तो दोनों की क्षति होगी। पेंचकस से हथौड़ी का काम और हथौड़ी से पेंचकस का काम लेना बुद्धिमानी नहीं। सामाजिक व्यवस्था में भी हम पाते हैं कि कार्यानुसार शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था है। यदि हम इसके विपरीत जायेंगे तो समाज की बहुत हानि होगी। ठीक इसी भाँति सामाजिक व्यवस्था को सुचारु रुप से चलाने हेतु चार वर्ण–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की व्यवस्था दी गयी सृष्टि के प्रारम्भ में ही। चारों वर्णों के विहित कर्म निर्दिष्ट किये गए। वर्णानुसार ही शारीरिक और बौद्धिक क्षमता मिली।

"शास्त्र-निर्धारित वार्षिक अत्यावश्यक कर्म के प्रति हमें सचेष्ट रहने की आवश्यकता है। आलस्य और लापरवाही वर्णोचित संस्कार में अवश्य-अवश्य कमी ला रही है-इस पर वर्तमान पीढ़ी का जरा भी ध्यान नहीं है। समयानुसार ब्राह्मणों की संस्कारहीनता के पीछे अपने विहित कर्म-श्रावणी (उपाकर्म) को विसार देना, एक मुख्य कारण है। पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति के कुटिल प्रहार से हमारी गुरुकुल परम्परा लगभग नष्ट हो चुकी है।"

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। (गीता ४-१३ पूर्वार्द्ध)

श्रीकृष्ण कहते हैं—मैंने गुण-कर्म के अनुसार चार वर्णों का सृजन किया । वर्तमान समय की अनेकानेक जातियों की बात यहाँ नहीं की जा रही है। जाति परिचय एक अलग विचारणीय विषय है।

बात यहाँ ऊँच-नीच की नहीं है, प्रत्युत कर्म के अनुसार गुण या कहें गुण के अनुसार

(लेखिका शिक्षाविद् एवं छत्तीसगढ़ में संस्कृत की आचार्य हैं।)

कर्म का निर्धारण मात्र है। स्थिति ऊपर-नीचे न होकर, क्षैतिज है। समान तल पर चारों अपने-अपने कार्यभार लिए हैं। हालाँकि वर्तमान समय में इस बात को बिलकुल विसार दिया गया है। और इसके कारण हो रही हानि पूरे समाज को भुगतनी पड़ रही है। ब्राह्मण ब्रह्मणत्व विहीन हो चुका है और श्रेष्टता का अहंकार उसे खाये जा रहा है। शूद्र को नीचा बताकर परोक्ष रुप से उसमें ऊपर चढ़ने की अनचाही तृषा जगा दी गयी है। परिणामतः सामाजिक व्यवस्था के चारो खूँटे अपने-अपने स्थान पर अव्यवस्थित रुप से कम्पायमान हैं।

यूँ तो सभी सनातनी सामाजिक मेलजोल से सालों भर कोई न कोई व्रत-त्योहार-पर्व आदि मनाते ही रहते हैं। किन्तु स्मृति, धर्मशास्त्र, गृह्यसूत्रादि के नियमानुसार चारों वर्णों के लिए अन्यान्य कर्मो के अतिरिक्त वर्ष में एक-एक मुख्य कर्म (उपासना) निर्धारित किया गया है। यथा—ब्राह्मण के लिए श्रावणमास की पूर्णिमा को श्रावणीकर्म (उपाकर्म), क्षत्रिय के लिए विजयादशमी का शौर्य-प्राप्त्यर्थ विजयकर्म, वैश्य के लिए दीपावली (लक्ष्मी-प्राप्त्यर्थ) एवं शूद्र के लिए होलीका दहनो परान्त रंगोत्सव । स्पष्ट है कि ब्राह्मणों का मुख्य पर्व श्रावणीकर्म (उपाकर्म) ही है। वर्तमान समय में रक्षाबन्धन(राखी) के नाम से लोक-प्रसिद्धि है इसकी। रक्षाबन्धन के औचित्य और महत्त्व की अलग कथा है। वस्तुतः ये आत्मरक्षा की व्यवस्था का दिन है, जो देवगुरु वृहस्पति द्वारा इन्द्राणी शची को दिए गए आशीष पर आधारित है। किन्तु विडम्बना ये है कि आज ये मात्र भाई-बहन का त्योहार बन कर रह गया है। इसका उपासना-पक्ष बिलकुल गायब हो गया है। सभी वर्ण और कुलों के लोग अपनी-अपनी विधि से इस दिन अपने कुलदेवी/देवता के साथ-साथ ग्रामदेवी की पूजा भी करते हैं। श्रावण पूर्णिमा को संस्कृतदिवस के रुप में भी मनाने का चलन है। चाहें तो इसे संस्कृतिदिवस भी कह सकते हैं। वस्तुतः गूढ़ सनातन संस्कृति के स्मरण और अनुपालन का दिन है ये। संस्कृत, संस्कृति और श्रावणीकर्म का त्रियोग अपने आप में विशिष्ठ है। विशेषकर ब्राह्मणों के लिए तो और भी महत्त्वपूर्ण है। समाज को सनमार्ग दिखाने वाला ब्राह्मण, यदि अपना ही मूल कर्तव्य भूल जायेगा तो फिर क्या बचेगा! सृष्टि-व्यवस्था ही चर्मराने लगेगी यदि ब्राह्मण संस्कारहीन हो जायेगा ।

अतः शास्त्र-निर्धारित वार्षिक अत्यावश्यक कर्म के प्रति हमें सचेष्ट रहने की आवश्यकता है। आलस्य और लापरवाही वर्णोचित संस्कार में अवश्य-अवश्य कमी ला रही है-इस पर वर्तमान पीढ़ी का जरा भी ध्यान नहीं है। समयानुसार ब्राह्मणों की संस्कारहीनता के पीछे अपने विहित कर्म-श्रावणी (उपाकर्म) को विसार देना, एक मुख्य कारण है। पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति के कुटिल प्रहार से हमारी गुरुकुल परम्परा लगभग नष्ट हो चुकी है। चालीस संस्कारों में किंचित मात्र ही शेष रह गया है। इस कुव्यवस्था में सुधार लाने की आवश्यकता है। समय पर (८

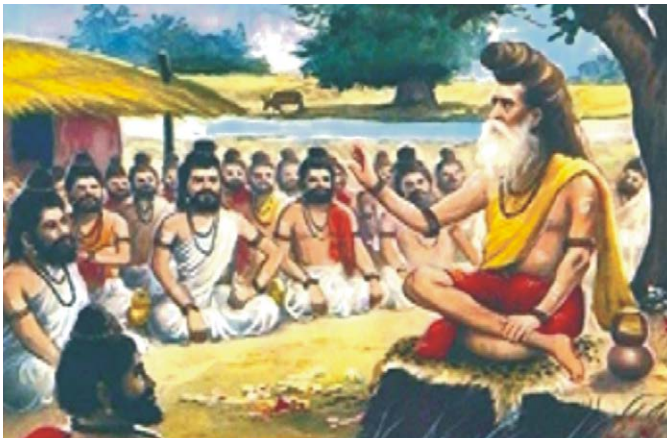

से १२ वर्ष तक) यज्ञोपवीतसंस्कार ग्रहण कर, संध्या-गायत्री उपासना का नित्य अभ्यास अति आवश्यक है। इसके साथ ही वार्षिक कर्म-श्रावणी की विशिष्ट क्रिया भी सम्पन्न होनी चाहिए। ध्यातव्य है कि इसी दिन पूरे वर्ष भर के लिए यज्ञोपवीत को पूजित-संस्कारित करके सुरक्षित रख लिया जाना चाहिए। यज्ञोपवीत का परिवर्तन जननाशौच, मरणाशौच के अतिरिक्त प्रत्येक मास संक्रान्तियों में होना चाहिए। जो लोग प्रत्येक मास संक्रान्तियों में यज्ञोपवीत नहीं बदलते, उन्हें भी कम से कम अयन परिवर्तन पर तो अवश्य ही बदल लेना चाहिए। श्रावणी कर्म के अन्तर्गत किए गये यज्ञोपवीत-पूजन की विशेष महत्ता है। बाकी दिनों में अज्ञान वा लाचारीवश सिर्फ गायत्राभिमन्त्रण क्रिया करके जनेऊ बदल लेते हैं।

वस्तुतः श्रावणी एक कर्म विशेष न होकर कर्मसमुच्चय है। इसके मुख्य दो पक्ष है-अन्तःपक्ष और वाह्यपक्ष। अन्तःपक्ष तो अति गूढ़ और रहस्यमय साधना प्रक्रिया है, किन्तु वाह्यपक्ष सहज अनुकरणीय है। वाह्यपक्ष के भी पुनः दो भेद हैं-पितृजीवी और पितृहीन। यानी जिसके पिता जीवित हैं उसके लिए श्रावणी-पद्धति किंचित न्यून(भिन्न) है और जिनके पिता दिवंगत हैं उनके लिए पद्धति किंचित विस्तृत है। विधिवत श्रावणी-कर्म लगभग छः से आठ घंटे की क्रिया है। नदी, सरोवर (अभाव में किसी पवित्र स्थल) पर ये क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए।

सर्वप्रथम अचमनादि के पश्चात् महासंकल्प (करीब दो हजार शब्दों का) का विधान है। वर्तमान समय में महासंकल्प हेतु विहित पुस्तक भी उपलब्ध होना कठिन है। आधुनिक पुस्तकों में संक्षिप्त संकल्प मात्र ही प्राप्त होते हैं। महासंकल्पोपरान्त देव, ऋषि, पित्यादि का तर्पण (जलदान), भूतशुद्धि, संध्या, गायत्री, सूर्योपस्थान, सूर्यार्घ्य, यज्ञोपवीत पूजन, विस्तृत विधान से ब्रह्मयज्ञादि क्रिया एवं ऋषिश्राद्धादि कर्म सम्पन्न किये जाते हैं। किंचित क्रिया भेद से तर्पणक्रिया आदि और मध्य में (दो बार) करनी पड़ती है। अस्तु।

आलेख

शिवान्वितायै च शिवान्वितायै नमः शिवायै नमः शिवायै

नीता चौबीसा

'शिव' में शिवतत्व और शक्तितत्व दोनो का अंतर्भाव होता है। परमशिव प्रकाश विमर्शमय है। इसी प्रकाशरूप को शिवतत्व और विमर्शरूप को शक्तितत्व कहते हैं। यही विश्व की सृष्टि, स्थिति और संहार के रूप में प्रकट होती है। बिना शक्ति के शिव को अपने प्रकाश रूप का ज्ञान नहीं होता। जब शिव ही अपने अंतःस्थित अर्थतत्व को बाहर निकालने के लिये उन्मुख होते है, तब उनका बाहरी रूप ही शक्ति कहलाता है।

(लेखिका राजस्थान की साहित्यकार एवं शिक्षाविद् हैं।)

सृष्टि का निर्माण,संचलन,व विनाश अबाधित अविरल चलने वाली प्रक्रिया है जिसमे शिव व शक्ति दोनों तत्वों की विशेष महत्वपूर्ण भूमिका होती है।शिव आरम्भ, अंत और मध्य इन तीनो का ही प्रारंभिक केंद्र बिंदु है। शिव तत्व सृष्टि का वो परम् रहस्य है, जो प्रकृति और पुरुष के अंतर को मिटाकर उसकी एकरूपता को स्थापित करता है। शिव ही ब्रह्मा के रूप मे सृष्टि का निर्माण, विष्णु के रूप मे रूप मे उसमे जीवन का संचार, और शंकर के रूप मे इस सृष्टि का अंत करते है। इसीलिये शास्त्रों मे ब्रह्मा, विष्णु और महेश का एक रूप मे प्रगट होना ही शिव कहा गया है, इसलिये शिव को जानने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रहता है।

शिव का अर्थ है- परम कल्याणकारी, इस भौतिकता से परे,चरम सत्य,अनन्त,शून्य जिसका कोई अस्तित्व नही.. परम् आनंदमय अवस्था। 'शिव' में शिवतत्व और शक्तितत्व दोनो का अंतर्भाव होता है। परमशिव प्रकाश विमर्शमय है। इसी प्रकाशरूप को शिवतत्व और विमर्शरूप को शक्तितत्व कहते हैं। यही विश्व की सृष्टि, स्थिति और संहार के रूप में प्रकट होती है। बिना शक्ति के शिव को अपने प्रकाश रूप का ज्ञान नहीं होता। जब शिव ही अपने अंतःस्थित अर्थतत्व को बाहर निकालने के लिये उन्मुख होते है, तब उनका बाहरी रूप ही शक्ति कहलाता है। यह सृष्टि केवल भौतिकता तक ही सीमित नही है और उससे परे जो शून्य है वह केवल अनुभवजन्य है,वाणी का विषय नही हो सकता,

वही शिव तत्व है। शक्ति के साथ एकाकार होने वाला यह शिव-तत्व क्या है ? वह शक्ति कौन है जो शिवत्व में विलीन हो जाती है ?यह समझने के लिए हमे 'शिव' एव 'शक्ति' दोनों के स्वरूप और लीला को समझना नितांत आवश्यक है।

'सौन्दर्यलहरी' में आदि शंकराचार्य ने प्रथम श्लोक में ही शक्ति का गुणगान करते हुए उद्घोष कर दिया है-

''शिवः शक्त्यायुक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं''

अर्थात 'शक्ति के बिना शिव तथा अन्य सभी देवता गतिहीन हो जाते हैं।' समस्त आगम-शास्त्र पराशक्ति की महिमा का गुणगान करते हैं। बिना पराशक्ति से शक्ति प्राप्त किए हुए ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश भी रचना, पालन तथा संहार का कार्य नहीं कर सकते हैं।आगम में एक स्थल पर स्वयं शिव मां शिवांगी से कहते हैं-

''शक्तिं बिना महेशानि ! सदाहं शव रूपकः,
शक्तियुक्तो महादेवि-शिवोहं सर्वकामदः
ईश्वरोहं महादेवि-केवलं शक्तियोगतः !''

अर्थात 'हे पार्वती ! तुम्हारे बिना में मृत अर्थात शव मात्र हूँ। तुम्हारे साथ रह कर ही मैं महादेव और सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला बन जाता हूँ।'आगम-ग्रन्थों में तो यहां तक बताया गया है कि शक्तिरहित शिव का तो नाम-धाम भी अस्तित्व में नहीं रह जाता है। यथा-''शक्त्याबिना शिवे सूक्ष्मे-नाम धाम न विद्यते''और इतना ही नहीं शक्तिहीन परमेश्वर कुछ भी करने में अक्षम हो जाते हैं-

''परोहिशक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किंचन''

इस प्रकार सनातन शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते है कि 'शिव' और 'शक्ति' एक ही तत्व के दो महा स्वरूप हैं जिस भक्ति चित्त के बिना चैतन्य नहीं हुआ जा सकता है उसी भांति 'शक्ति' के बिना 'शिव' को प्राप्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि शक्ति ही शिव की इच्छा युक्त अभिव्यक्ति है। शिव सृष्टि की लीला है तो उसकी क्रिया शक्ति ही है। शिव को जानने के लिए शक्ति को पहचानना आवश्यक है। शक्ति ही यथार्थ में शिव तत्व है और यही मूल तत्व शिव के अर्धनारीश्वर होने का रहस्य भी है।सतही तौर पर देखने पर यह दो अलग इकाई दृष्टव्य होती हैं किंतु वास्तव में शिव और शक्ति एक दूसरे से अभिन्न व पूरक हैं। जिस तरह सूर्य और उसकी ऊर्जा, अग्नि और उसकी दाहक क्षमता, दूध और उसकी धवलता इतने अभिन्न हैं कि हम उन्हें अलग करके नही देख सकते, ठीक उसी प्रकार शिव को शक्ति से पृथक कर देखना ,समझना असम्भव है।यही कारण है कि शिव की आराधना शक्ति की आराधना है और शक्ति की उपासना शिव की उपासना है।एक कि उपासना से दूसरा स्वतः सिद्ध हो जाता है।यही सम्पूर्ण सृष्टि का भी सत्य है क्योंकि इन्ही दो तत्वों से मिलकर इस सृष्टि की रचना हुई है।पौराणिक कथा कहानियों से इतर शिव के अर्धनारीश्वर रूप का एक परम् उज्ज्वल सत्य यह भी है ,यही कारण है कि शक्ति का एक नाम शिवांगी भी हुआ।जो मूल में सत् है। शिव यानी कल्याणकारी है। रुद्र भी है- रुलाने वाला। अद्वैत है, लेकिन द्वैत में भी प्रतिष्ठित है

और दोनों से परे होकर दोनों का अधिष्ठान भी है।

शिव और शक्ति-ये परम तत्व के दो रूप हैं। शिव अव्यक्त, अदृश्य, सर्वगत एवं अचल आत्मा -परमात्मा हैं। शक्ति दृश्य, चल एवं नाम-रूप के द्वारा व्यक्त सत्ता है। शिव और शक्ति एक-दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है। इस संदर्भ में शिवपुराण में कहा गया है--

'एवं परस्परापेक्षा शक्तिशक्तिमतोः स्थिता।

न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तया विना शिवः॥'

'शक्ति और शक्तिमान (शिव) को सदा एक-दूसरे की अपेक्षा रहती है। न तो शिव के बिना शक्ति रह सकती है और न ही शक्ति के बिना शिव रह सकते हैं।'इससे यह स्पष्ट है कि शक्तिमान अर्थात शिव न हों, तो शक्ति की कल्पना बेमानी है। वहीं, अगर शक्ति न हो, तो शक्तिमान का अस्तित्व असंभव है। इसी कारण 'इ' कार अर्थात 'शक्ति' हीन 'शिव' तो 'शव' बन जाता है। वस्तुतः शक्तिमान के स्वरूप की अभिव्यक्ति उनकी 'शक्ति' से होती है। इसलिए 'शक्ति' का स्वरूप भी वही है, जो 'शक्तिमान' का है। सही मायने में 'शिव' और 'शक्ति' एक-दूसरे के अभिन्न हैं। जैसे-जलते हुए दीपक की शिखा सारे घर को उजाला देती है, उसी तरह शिव-पार्वती का तेज सर्वत्र व्याप्त होकर संपूर्ण जगत को प्रकाश देता रहता है। ये दोनों-शिवा और शिव मिलकर सारी सृष्टि की रचना, पालन और संहार करते हैं।

कृष्ण यजुर्वेदीय रुद्रहृदयोपनिषद् में भी यही सिद्धांत वर्णित है।इसमे कहा गया है कि--

'रुद्रो नर उमा नारी तस्मै तस्यै नमो नमः।

रुद्रो ब्रह्मा उमा वाणी तस्मै तस्यै नमो नमः॥

रुद्रो विष्णुरुमा लक्ष्मीस्तस्मै तस्यै नमो नमः।

रुद्रो लिंगमुमा पीठं तस्मै तस्यै नमो नमः॥'

वेदों में शिव को 'रुद्र' कहा गया है। उपनिषद् का कथन है- 'शिव नर तो उमा नारी, शिव ब्रह्मा तो उमा सरस्वती, शिव विष्णु तो उमा लक्ष्मी, शिव लिंग-रूप तो उमा पीठ अर्थात अर्घा हैं।' अर्थात् संसार में जितने पुल्लिंग प्राणी हैं, वे सब महेश्वर रूप शिव के प्रतिरूप हैं तथा जितने स्त्रीलिंग प्राणी हैं, वे सभी उमा रूपी पार्वती के ही स्वरूप हैं।

पुरुष और प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित होने से ही सृष्टि सुचारु रूप से चल पाती है। शिव और शक्ति के प्रतीक शिवलिंग का भी यही अर्थ है। यहां शिव पुरुष के प्रतीक हैं, और शकृति स्वरुप देवी पार्वती प्रकृति की। शिवलिंग के रूप में भगवान शिव बताते हैं कि पुरुष और प्रकृति के बीच यदि संतुलन न हो, तो सृष्टि का कोई भी कार्य भलीभांति संपन्न नहीं हो सकता है। जब शिव अपना भिक्षु रूप, तो शक्ति अपना भैरवी रूप त्याग कर समान्य ऐहिक लीला रूप धारण करती हैं, तब वे ललिता, और अवधूत शिव, शंकर बन जाते हैं। इस संबंध में न कोई विजेता है और न कोई विजित है, दोनों का एक-दूसरे पर संपूर्ण सर्वांग, अर्धांग,साधिकार है, जिसे विशुद्ध प्रेम कहते हैं।यही प्रेम शिव और शिवांगी का महालास्य है और यही सृष्टि अर्थात विस्तार या निर्माण है।रौद्र रूप में यह रुद्र और रुद्राणी का महाताण्डव है जो विनाश का प्रतीक है।

शिव - शक्ति की इस महालास्य रहस्य लीला को समझना है, तो हमें उनके एक अन्य रूप 'नटराज' स्वरूप को समझना होगा। वह रूप जिसमें शिव नृत्यरत हैं। शिव को नाट्य और नृत्य का आदि प्रवर्तक भी कहा जाता है जिसका विशद वर्णन भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में मिलता है।नटराज शिव का प्रमुख नृत्य है- तांडव, जिसके दो रूप हैं- रौद्र तांडव और आनंद तांडव। जब शिव रौद्र तांडव करते हैं तो वे रुद्रत्व को प्राप्त होते हैं। वही शिव जब आनंद तांडव के उल्लास में मग्न होकर नाचते हैं तो वे नटराज कहलाते हैं। जहां रौद्ररूप में वे संहार का कार्य करते हैं, वहीं नटराज के रूप में वे सृजन करते हैं।तांडव भगवान् शिव द्वारा किया गया एक रचनात्मक और विनाशकारी लौकिक नृत्य है।इसी तरह लास्य शक्तिरूपा शिवांगी द्वारा तांडव के समानांतर किया जाने वाला नृत्य है। शैव मत में तांडव का एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण विवरण हमें देखने को मिलता है।

शैव परंपरा बिना तांडव और लास्य के एकदम रिक्त लगती है क्योंकि नटराज के रूप में नृत्य का रूपक सीधेसीधे नाद से जुड़ा है। नाद सृष्टि का स्पंदन है ,उसी से जीवन है,गति है।नाद ही विशुद्ध प्रेम का आधार भी है जो शिव और शक्ति के एकीकरण को, महालास्य को प्रेरित करती है।इसी शिव शक्ति के एकीकृत रूप को हृदय में धारण करने के लिए चैतन्य के नाद से स्वयं को जोड़ना होगा। यह नाद क्या है? यह कोई ध्वनि मात्र नहीं, बल्कि चराचर में चेतना की गूंज है। यह नाद है प्रेम का, जो हमें अविभाजित चैतन्य में ले जाता है- जहां कोई दूसरा नहीं होता, जहां कोई भेद नहीं होता, जहां केवल शिवत्व होता है। उस हृदय में नाद स्वयं बज उठता है, नटराज का नृत्य थिरक उठता है और शिव-शक्ति का संगम हो जाता है। भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र के चौथे अध्याय तांडव लक्षणं में 32 अनुग्रहों और 108 करणों का वर्णन किया है। करण अर्थात हाथ और पैर के समायोजन से नृत्य को प्रस्तुत करना। ये समायोजन नृत्य से लेकर युद्ध तक के मुद्राओं को जन्म देते हैं।तांडव निम्नलिखित पांच सिद्धांतों पर कार्य करता है-

सृष्टि का निर्माण, विकास

सृष्टि का संरक्षण, संवर्धन

संहार - विनाश, विकास

तिरोधन - भ्रम

अनुग्रह - विमोचन, मुक्ति

शास्त्रीय मान्यता के अनुसार उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर ही पूरी सृष्टि का सृजन,संचलन व विनाश की प्रक्रिया चलती है इसमे भी प्रमुखतः भेद आनंद तांडव, त्रिपुर तांडव, संध्या तांडव, संहार तांडव, काली तांडव, उमा तांडव और गौरी तांडव अलग अलग प्रक्रियाओं को प्रस्तुत करते है। तांडव के एक अन्य रूप को 'लास्य' के रूप में जाना जाता है, यह नृत्य शिव और शक्ति द्वारा मिलकर किया गया था।वह नृत्य जो भाव और ताल आदि के सहित हो, कोमल अंग संचलन से हो और जससे प्रेम, श्रृंगार आदि कोमल रसों का उद्दीपन होता हो ।यह लास्य दो प्रकार का कहा गया है—छुरित और यौवत ।साहित्यदर्पण में इसके दस अंग बतलाए गए हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—गेयपद, स्थितपाठ, आसीन, पुष्पगंडिका, प्रच्छेदक, त्रिगूढ़, सैंधबाख्य, द्विगूढ़क, उत्तमीत्तमक और युक्तप्रयुक्त ।

पौराणिक मान्यता है कि यह नृत्य शिव के तांडव के समानार्थ ही प्रस्तुत किया गया था। यह शिव और शिवा का महालास्य सृष्टि में प्रेम, सौंदर्य, ख़ुशी, काम और अनुग्रह,सृजन,विस्तार आदि ले कर आता है।सम्पूर्ण सृष्टिं इसी प्रेमपूर्ण शिव शिवांगी के महालास्य के परिहास का प्रसाद है और तांडव समस्त जजर्र पुरातनताओ,नकारात्मकताओ के विन्ध्वन्स और विनाश की प्रक्रिया है। सृष्टि में दोनों अविरल साथ साथ चलती रहती है।शिव अविभाजित चैतन्य हैं जिनमें दोनों ही - रौद्र व आनंद एकसाथ प्रकट हो रहे हैं, जिस तरह किसी शांत झील में लहरें पैदा हो रही हों। यह संसार ही इन दोनों तांडव-लास्य की अभिव्यक्ति है। यहां प्रतिपल सृजन चलता रहता है, साथ ही विनाश भी। इस संसार की पृष्ठभूमि हैं।

शिव- वह अनादि चेतना जिसमें निर्माण-संहार का खेल होता हुआ जान पड़ रहा है। संसार का अर्थ है जो निरंतर सरकता रहे, परिवर्तित होता रहे। लेकिन बदलाव तभी देखा जा सकता है, जब उसके पीछे एक ऐसी पृष्ठभूमि हो जिसमें बदलाव न हो रहा हो- यही अपरिवर्तनीय चेतना शिव है।मानवीय भाषा में शिव का यह जो 'करना' व 'होना' है, उनकी जो अभिव्यक्ति है- वही शक्ति है। उसी अविभाजित पृष्ठभूमि में बदलाव की प्रतीति शक्ति है। यूं कहें कि शिव और शक्ति कोई दो अलग सत्ताएं नहीं हैं। जब शिव अभिव्यक्त होता है तो शक्ति हो जाता है और जब शक्ति अभिव्यक्ति समेट ले तो शिव हो जाती है। नटराज रूप में हमें शिव और शक्ति एक साथ मिल जाते हैं।यह परुष और प्रकृति का संयोजन है।

पुरुष और प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित होने से ही सृष्टि सुचारु रूप से चल पाती है। शिव और शक्ति के प्रतीक शिवलिंग का यही अर्थ है। यहां शिव पुरुष के प्रतीक हैं, और शक्ति स्वरुप देवी पार्वती प्रकृति की। शिवलिंग के रूप में भगवान शिव बताते हैं कि पुरुष और प्रकृति के बीच यदि संतुलन न हो, तो सृष्टि का कोई भी कार्य भलीभांति संपन्न नहीं हो सकता है। जब शिव अपना भिक्षु रूप, तो शक्ति अपना भैरवी रूप त्याग कर समान्य घरेलू रूप धारण करती हैं, तब वे ललिता, और शिव, शंकर बन जाते हैं। इस संबंध में न कोई विजेता है और न कोई विजित है, दोनों का एक-दूसरे पर संपूर्ण अधिकार है, जिसे प्रेम कहते हैं।

पौराणिक मान्यता है कि यह नृत्य शिव के तांडव के समानार्थ ही प्रस्तुत किया गया था। यह शिव और शिवा का महालास्य सृष्टि में प्रेम, सौंदर्य, ख़ुशी, काम और नुग्रह,सृजन,विस्तार आदि ले कर आता है। सम्पूर्ण सृष्टिं इसी प्रेमपूर्ण शिव शिवांगी के महालास्य के परिहास का प्रसाद है और तांडव समस्त जर्राओ, नकारात्मकताओ के विन्ध्वन्स और विनाश की प्रक्रिया है।

शिव की पूजा सदैव ही शक्ति के साथ ही की जाती है चाहे वह उनके अर्द्धनारीश्वर रूप में हो या लिंग रूप में।शिव लिंग में भी आद्य भाग शक्ति का ही प्रतीक है।क्योंकि शिव और शक्ति दो नही एक सयुंक्त इकाई ही रही कालन्तर में शिव पुराण के अनुसार आकाशवाणी हुई और ब्रह्माजी ने मैथुनी या प्रजननी सृष्टि उत्पन्न करने का संकल्प किया। तब ब्रह्माजी की तपस्या से परमात्मा शिव संतुष्ट किया और शिव ने अपने शरीर में स्थित देवी शक्ति के अंश को पृथक कर दिया और उसे अपने वाम भाग में स्थान दे कर अर्धनारीश्वर रूप धारण कर लिया जो स्त्री परुष की समानता व सृष्टि या प्रसविनी क्षमता का प्रतीक है।शक्ति के शिव में संयुक्त होने को लेकर एक कथा बेहद प्रचलित है।इस कथा के अनुसार शिव-पार्वती विवाह के बाद शिवभक्त भृंगी ने उनकी प्रदक्षिणा करने की इच्छा व्यक्त की। शिव ने कहा कि आपको शक्ति की भी प्रदक्षिणा करनी होगी, क्योंकि उनके बिना मैं अधूरा हूं। भृंगी इसके लिए तैयार नहीं हुए। वे देव और देवी के बीच प्रवेश करने का प्रयत्न करते हैं। इस पर देवी, शिव की जंघा पर बैठ जाती हैं, जिससे वे यह काम न कर सकें। भृंगी भौंरे का रूप धारण कर उन दोनों की गर्दन के बीच से गुजर कर शिव की परिक्रमा पूरी करना चाहते हैं। तब शिव ने अपना शरीर शक्ति के

शरीर के साथ जोड़ लिया। अब वे अर्द्धनारीश्वर बन गए। अब भृंगी दोनों के बीच से नहीं गुजर सकते थे।शक्ति को अपने शरीर का आधा भाग बनाकर शिव ने सुपष्ट किया कि वास्तव में स्त्री की शक्ति को स्वीकार किए बिना पुरुष पूर्ण नहीं हो सकता और शिव की भी प्राप्ति नहीं हो सकती, केवल शक्ति के माध्यम से ही ऐसा हो सकता है। इसीलिए शक्ति के जागरण के साथ ही शिवत्व की प्राप्ति हो जाती है और शिवार्चन के साथ ही शक्ति की भी अर्चना स्वतः हो जाती है।

शिव स्वयं महायोगी है,भस्मरमैय्या, श्मशानवासी,

बाघम्बरी,सभी अशुद्धताओ को धारण करने वाले, अवधूत किन्तु देवी शक्ति से संयोग होते ही वे गृहस्थ होते है,सृजनशील हॉट जाते है।शिव को जागतिक बना कर भी समभाव और सौंदर्य का अनुभव कराने वाली शक्ति ही है।शक्तिरूपा पार्वती साधना के माध्यम से शिव के हृदय में करुणा और समभाव जगाना चाहती हैं। पार्वती की साधना अन्य तपस्वियों की तपस्या से भिन्न है। सुर-असुर और ऋषि ईश्वर की प्राप्ति और अपनी इच्छापूर्ति के लिए तपस्या करते हैं। पार्वती किसी भी इच्छा या वरदान को परे रखकर ध्यान लगाती हैं। वे अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं, बल्कि संसार के लाभ के लिए तपस्या करती हैं। शिव पुराण के अनुसार, जब पार्वती शिव को पाने के लिए साधना करती हैं, तो शिव उन्हें ध्यान से देखते हैं। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सती ही पार्वती हैं। वे सोचते हैं कि यदि वे अपनी आंखे बंद कर लेंगे, तो वह काली में बदल जाएंगी और उनका रूप भयंकर हो जाएगा। अगर वे आंखें खोले रहेंगे, तो वह सुंदर और सुरूप गौरी बनी रहेंगी। इसके आधार पर वे यह बताना चाहते हैं कि अगर प्रकृति को ज्ञान की दृष्टि से न देखा जाए, तो वह भयंकर हो जाती है। यदि ज्ञान और संवेदना के साथ देखा जाए तो वह सजग और सुंदर प्रतीत होती है। वहीं पार्वती शिव को अपना दर्पण दिखाती हैं, जिसमें वे अपना शंकर अर्थात शांत रूप देख पाते हैं।यही कारण है कि प्रायः सभी मंदिरों में शिव के साथ पार्वती का विग्रह भी पूजा जाता है।

आदियोगी शिव -शक्ति का स्वरूप यही सिखलाता समझाता है कि संसार मे रह कर सभी कर्तव्य कर्मो को करते हुए चेतना के स्तर पर कैसे ऊपर उठा जाए।उनके द्वारा बताए गए ध्यान के एक सौ बारह उपायो के माध्यम से मनुष्य अपनी सीमाओं से परे जा कर अपनी उच्चतम संभावना तक पहुँच सकता हैं,भीतरी चिदशक्ति का विकास व जागरण कर सकता है। यही योग के एक सौ बारह उपाय व्यक्तिगत रूपांतरण के वे साधन है जो न केवल पशु हुए मनुज को बदल कर शिवत्व तक ले जा सकते है बल्कि यही संसार के रूपांतरण का एकमात्र उपाय भी है। शिव की भांति बाहरी चक्षुओं को मूँद कर भीतरी दिव्य चक्षु की ओर उन्मुख होना ही शिवार्चन का अभीष्ट है। जिसे शिव की भांति अंदर की ओर मुड़ने की कला आ जाती है वह अवधूत हो जाता है और ऐहिक जगत में रहते हुए भी सभी कठिनाइयों से जूझते हुए भी नवीन सम्भावनाओ के वातायन खोल लेता है। यही मनुष्यता के कल्याण और मुक्ति का उपर्युक्त साधन भी है।अतःआइए हम मनुष्यता के कल्याण के लिए अवधूत हुए महायोगी शिव की अर्चना कर अपनी शक्ति का जागरण कर ले और चेतना के नवीन स्तरों का नया आयाम खोल शिवार्चन को सार्थक करे।यही सच्ची शिव पूजा होगी।आदियोगी शिव का स्वरूप यही सिखलाता समझाता है कि संसार मे रह कर सभी कर्तव्य कर्मो को करते हुए चेतना के स्तर पर कैसे ऊपर उठा जाए। उनके द्वारा बताए गए एक सौ बारह उपायो के माध्यम से मनुष्य अपनी सीमाओं से परे जा कर अपनी उच्चतम संभावना तक पहुँच सकता हैं। यही योग के एक सौ बारह उपाय व्यक्तिगत रूपांतरण के वे साधन है जो न केवल पशु हुए मनुज को बदल कर शिवत्व तक ले जा सकते है बल्कि यही संसार के रूपांतरण का एकमात्र उपाय भी है। शिव की भांति बाहरी चक्षुओं को मूँद कर भीतरी दिव्य चक्षु की ओर उन्मुख होना ही शिवार्चन का अभीष्ट है।

शिवान्वितायै च शिवान्वितायै नमः शिवायै ..',

जिसे शिव की भांति अंदर की ओर मुड़ने की कला आ जाती है वह अवधूत हो जाता है और ऐहिक जगत में रहते हुए भी सभी कठिनाइयों से जूझते हुए भी नवीन सम्भावनाओ के वातायन खोल लेता है। यही मनुष्यता के कल्याण और मुक्ति का उपर्युक्त साधन भी है। अतःआइए हम मनुष्यता के कल्याण के लिए अवधूत हुए महायोगी शिव की अर्चना कर अपनी चेतना के नवीन स्तरों का नया आयाम खोल शिवार्चन को सार्थक करे। यही सच्ची शिव पूजा होगी और यही शक्ति का जागरण अर्चन भी होगा !

सनातन वैदिक भारत की संरक्षक शिवभक्त मां अहिल्याबाई

डॉ. अर्चना तिवारी

वह केवल एक रानी नही थीं। केवल एक योद्धा नही थीं। केवल एक प्रशासक नही थीं। केवल एक संवेदनशील नारी नही थीं। केवल एक सहृदय मानवीय प्रतिमूर्ति नही थीं। केवल एक बेटी, एक बहू, एक मां और एक सामान्य भक्त ही भर नही थीं, बल्कि यह सब होने के साथ ही सनातन वैदिक भारत की संरक्षक के रूप में ही उन्हें नमन करने का मन होता है। माँ अहिल्याबाई भले ही मालवा जैसे राज्य की अधिपति रहीं लेकिन वह भारत की सनातन संस्कृति में हमारी दैवीय शक्तियों के समकक्ष ही प्रतीत होती हैं। 31 मई ऐसी हमारी पूज्य माता अहिल्याबाई का अवतरण दिवस है। 13 अगस्त इनकी पुण्यतिथि है।

> माता अहिल्याबाई ने इंदौर को एक छोटे-से गांव से खूबसूरत शहर बनाया। मालवा में कई किले और सड़कें बनवाईं। उन्होंने कई घाट, मंदिर, तालाब, कुएं और विश्राम गृह बनवाए। न केवल दक्षिण भारत में बल्कि हिमालय पर भी। सोमनाथ, काशी, गया, अयोध्या, द्वारका, हरिद्वार, कांची, अवंती, बद्रीनारायण, रामेश्वर, मथुरा और जगन्नाथपुरी आदि का उद्धार और पुनर्निर्माण कराया।

(लेखिका प्रख्यात शिक्षाविद् राष्ट्रसेविका एवं संस्कृति पर्व की कार्यकारी सम्पादक हैं।)

कल्पना कीजिये कि आज से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व जब भारत के अधिकांश हिस्सों पर आक्रांताओं का कहर बरस रहा था, जब अधिकांश स्थापित हिन्दू वैदिक सनातन संस्कृति के संरक्षक मंदिरों को लूट कर मुस्लिम आक्रांताओं ने खंडहर बना दिया था तब शिवकृपा से मालवा में अवतरित इस देवी ने ही सभी का उद्धार किया । इसी हमारी माता अहिल्याबाई ने इंदौर को एक छोटे-से गांव से खूबसूरत शहर बनाया। मालवा में कई किले और सड़कें बनवाईं। उन्होंने कई घाट, मंदिर, तालाब, कुएं और विश्राम गृह बनवाए। न केवल दक्षिण भारत में बल्कि हिमालय पर भी। सोमनाथ, काशी, गया, अयोध्या, द्वारका, हरिद्वार, कांची, अवंती, बद्रीनारायण, रामेश्वर, मथुरा और जगन्नाथपुरी आदि का उद्धार और पुनर्निर्माण करा कर सनातनता के स्थापित तीर्थो और धामों को इस योग्य बनाया जिससे आज हम सभी सनातन वैदिक संस्कृति में आस्था रखने वाले हिंदुओ को अपने अस्तित्व के प्रमाण बहुत आसानी से मिल जाते हैं।

अब आज जब देश उनकी जयंती मना रहा है तो यह भी आवश्यक हो जाता है कि अपनी ऐसी महान माता के इतिहास से भी परिचित हो लिया जाय। जो उपलब्ध साहित्यिक साक्ष्य और थोड़ा सा लिखित इतिहास सामने उपस्थित है उसके अनुसार महारानी अहिल्याबाई इतिहास-प्रसिद्ध सूबेदार मल्हारराव होलकर के पुत्र खंडेराव की पत्नी थीं। जन्म इनका सन् 1725 में हुआ था और देहांत 13 अगस्त 1795 को(तिथि उस दिन भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशी थी। अहिल्याबाई किसी बड़े भारी राज्य की रानी नहीं थीं। उनका कार्यक्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित था। फिर भी उन्होंने जो कुछ किया, उससे आश्चर्य होता है। महारानी अहिल्याबाई होलकर भारत के मालवा साम्राज्य की मराठा होलकर महारानी थी। अहिल्याबाई का जन्म 31 मई 1725 को महाराष्ट्र के अहमदनगर के छौंड़ी ग्राम में हुआ। उनके पिता मंकोजी राव शिंदे, अपने गाव के पाटिल थे। उस समय महिलाये स्कूल नही जाती थी, लेकिन अहिल्याबाई के पिता ने उन्हें लिखने -पढ़ने लायक पढ़ाया। अहिल्याबाई के पति खांडेराव होलकर 1754 के कुम्भेर युद्ध में शहीद हुए थे। 12 साल बाद उनके ससुर मल्हार राव होलकर की भी मृत्यु हो गयी। इसके एक साल बाद ही उन्हें मालवा साम्राज्य की महारानी का ताज पहनाया गया।

वह हमेशा से ही अपने साम्राज्य को मुस्लिम आक्रमणकारियो से बचाने की कोशिश करती रही। बल्कि युद्ध के दौरान वह खुद अपनी सेना में शामिल होकर युद्ध करती थी। उन्होंने तुकोजीराव होलकर को अपनी सेना के सेनापति के रूप में नियुक्त किया था। रानी अहिल्याबाई ने अपने साम्राज्य महेश्वर और इंदौर में काफी मंदिरो का निर्माण भी किया था। इसके साथ ही उन्होंने लोगो के रहने के लिए बहोत सी धर्मशालाए भी बनवायी, ये सभी धर्मशालाए उन्होंने मुख्य्य तीर्थस्थान जैसे गुजरात के द्वारका, काशी विश्वनाथ, वाराणसी का गंगा घाट, उज्जैन, नाशिक, विष्णुपद मंदिर और बैजनाथ के आस-पास ही बनवायी. मुस्लिम आक्रमणकारियो के द्वारा तोड़े हुए मंदिरो को देखकर ही उन्होंने सोमनाथ में शिवजी का मंदिर बनवाया। जो आज भी हिन्दुओ द्वारा पूजा जाता है। इनका विवाह इन्दौर राज्य के संस्थापक महाराज मल्हार राव होल्कर के पुत्र खंडेराव से हुआ था। सन् 1745 में अहिल्याबाई के पुत्र हुआ और तीन वर्ष बाद एक कन्या। पुत्र का नाम मालेराव और कन्या का नाम मुक्ताबाई रखा। उन्होंने बड़ी कुशलता से अपने पति के गौरव को जगाया। कुछ ही दिनों में अपने महान पिता के मार्गदर्शन में खण्डेराव एक अच्छे सिपाही बन गये। मल्हारराव को भी देखकर संतोष होने लगा। पुत्र-वधू अहिल्याबाई को भी वह राजकाज की शिक्षा देते रहते थे।

उनकी बुद्धि और चतुराई से वह बहुत प्रसन्न होते थे। मल्हारराव के जीवन काल में ही उनके पुत्र खंडेराव का निधन 1754 ई. में हो गया था। अतः मल्हार राव के निधन के बाद रानी अहिल्याबाई ने राज्य का शासन-भार सम्भाला था। रानी अहिल्याबाई ने 1795 ई. में अपनी मृत्यु पर्यन्त बड़ी कुशलता से राज्य का शासन चलाया। उनकी गणना आदर्श शासकों में की जाती है। वे अपनी उदारता और प्रजावत्सलता के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके एक ही पुत्र था मालेराव जो 1766 ई. में दिवंगत हो गया। 1767 ई. में अहिल्याबाई ने तुकोजी होल्कर को सेनापति नियुक्त किया।

रानी अहिल्याबाई अपनी राजधानी महेश्वर ले गईं। वहां उन्होंने 18वीं सदी का बेहतरीन और आलीशान अहिल्या महल बनवाया। पवित्र नर्मदा नदी के किनारे बनाए गए इस महल के ईर्द-गिर्द बनी राजधानी की पहचान बनी टेक्सटाइल इंडस्ट्री। उस दौरान महेश्वर साहित्य, मूर्तिकला, संगीत और कला के क्षेत्र में एक गढ़ बन चुका था। मराठी कवि मोरोपंत, शाहिर अनंतफंडी और संस्कृत विद्वान खुलासी राम उनके कालखंड के महान व्यक्तित्व थे। एक बुद्धिमान, तीक्ष्ण सोच और स्वस्फूर्त शासक के तौर पर अहिल्याबाई को याद किया जाता है। हर दिन वह अपनी प्रजा से बात करती थी। उनकी समस्याएं सुनती थी। उनके कालखंड (1767-1795) में रानी अहिल्याबाई ने ऐसे कई काम किए कि लोग आज भी उनका नाम लेते हैं। अपने साम्राज्य को उन्होंने समृद्ध बनाया। उन्होंने सरकारी पैसा बेहद बुद्धिमानी से कई किले, विश्राम गृह, कुएं और सड़कें बनवाने पर खर्च किया। वह लोगों के साथ त्योहार मनाती और हिंदू मंदिरों को दान देती। अहिल्याबाई का मानना था कि धन, प्रजा व ईश्वर की दी हुई वह धरोहर स्वरूप निधि है, जिसकी मैं मालिक नहीं बल्कि उसके प्रजाहित में उपयोग की जिम्मेदार संरक्षक हूँ । उत्तराधिकारी न

होने की स्थिति में अहिल्याबाई ने प्रजा को दत्तक लेने का व स्वाभिमान पूर्वक जीने का अधिकार दिया। प्रजा के सुख दुख की जानकारी वे स्वयं प्रत्यक्ष रूप प्रजा से मिलकर लेतीं तथा न्याय-पूर्वक निर्णय देती थीं। उनके राज्य में जाति भेद को कोई मान्यता नहीं थी व सारी प्रजा समान रूप से आदर की हकदार थी। इसका असर यह था कि अनेक बार लोग निजामशाही व पेशवाशाही शासन छोड़कर इनके राज्य में आकर बसने की इच्छा स्वयं इनसे व्यक्त किया करते थे । अहिल्याबाई के राज्य में प्रजा पूरी तरह सुखी व संतुष्ट थी क्योंकि उनका विचार में प्रजा का संतोष ही राज्य का मुख्य कार्य होता है। लोकमाता अहिल्या का मानना था कि प्रजा का पालन संतान की तरह करना ही राजधर्म है ।

अहिल्याबाई किसी बड़े भारी राज्य की रानी नहीं थीं, बल्कि एक छोटे भू-भाग पर उनका राज्य कायम था और उनका कार्यक्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित था, इसके बावजूद जनकल्याण के लिए उन्होंने जो कुछ किया, वह आश्चर्यचकित करने वाला है, वह चिरस्मरणीय है। राज्य की सत्ता पर बैठने के पूर्व ही उन्होंने अपने पति–पुत्र सहित अपने सभी परिजनों को खो दिया था इसके बाद भी प्रजा हितार्थ किये गए उनके जनकल्याण के कार्य प्रशंसनीय हैं। उन्हों ने 1777 में विश्व प्रसिद्ध काशी विश्वनाथ मंदिर का निर्माण कराया। शिव की भक्त अहिल्याबाई का सारा जीवन वैराग्य, कर्त्तव्य-पालन और परमार्थ की साधना का बन गया। मुस्लिम आक्रमणकारियों के द्वारा तोड़े हुए मंदिरों को देखकर ही उन्होंने सोमनाथ में शिव का मंदिर बनवाया। जो शिवभक्तों के द्वारा आज भी पूजा जाता है। शिवपूजन के बिना मुंह में पानी की एक बूंद नहीं जाने देती थी। सारा राज्य उन्होंने शंकर को अर्पित कर रखा था और आप उनकी सेविका बनकर शासन चलाती थी। शिव के प्रति उनके समर्पण भाव का पता इस बात से चलता है कि अहिल्याबाई राजाज्ञाओं पर हस्ताक्षर करते समय अपना नाम नहीं लिखती थी, बल्कि पत्र के नीचे नीचे केवल श्री शंकर लिख देती थी। उनके रुपयों पर शिवलिंग और बिल्व पत्र का चित्र ओर पैसों पर नंदी का चित्र अंकित है। कहा जाता है कि तब से लेकर भारतीय स्वराज्य की प्राप्ति तक उनके बाद में जितने नरेश इंदौर के सिंहासन पर आये सबकी राजाज्ञाऐं जब तक कि श्रीशंकर की नाम से जारी नहीं होती, तब तक वह राजाज्ञा नहीं मानी जाती थी और उस पर अमल भी नहीं होता था।

उन्होंने स्त्रियों की सेना बनाई, लेकिन वे यह बात अच्छी तरह से जानती थीं कि पेशवा के आगे उनकी सेना कमजोर थी। इसलिए उन्होंने पेशवा को यह समाचार भेजा कि यदि वह स्त्री सेना से जीत हासिल भी कर लेंगे, तो उनकी कीर्ति और यश में कोई बढ़ोत्तरी नहीं होगी, दुनिया यही कहेगी कि स्त्रियों की सेना से ही तो जीते हैं और अगर आप स्त्रियों की सेना से हार गये, तो कितनी जग हंसाई होगी आप इसका अंदाजा भी नहीं लगा सकते। अहिल्या बाई की यह बुद्धिमानी काम कर गई और पेशवा ने आक्रमण करने का विचार बदल दिया। इसके बाद महारानी पर दत्तक पुत्र लेने का भी दबाव बढ़ने लगा, लेकिन उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया क्योंकि वे प्रजा को ही अपना सबकुछ मानती थीं। उनके इस फैसले के बाद राजपूतों ने उनके खिलाफ विद्रोह छेड़ दिया, लेकिन रानी ने कुशलतापूर्वक उस विद्रोह का ही दमन कर दिया। अपनी कुशाग्र बुद्धि का प्रयोग करते हुए रानी अहिल्या बाई होल्कर ने मालवा के खजाने को फिर से भर दिया।

अहिल्याबाई ने अपने राज्य की सीमाओं के बाहर भारत-भर के प्रसिद्ध तीर्थों और स्थानों में मंदिर बनवाए, घाट बँधवाए, कुओं और बावड़ियों का निर्माण किया, मार्ग बनवाए-सुधरवाए, भूखों के लिए अन्नसत्र (अन्यक्षेत्र) खोले, प्यासों के लिए प्याऊ बिठलाईं, मंदिरों में विद्वानों की नियुक्ति शास्त्रों के मनन-चिंतन और प्रवचन हेतु की। आत्म-प्रतिष्ठा के झूठे मोह का त्याग करके सदा न्याय करने का प्रयत्न करती रहीं-मरते दम तक। ये उसी परंपरा में थीं जिसमें उनके समकालीन पूना के न्यायाधीश रामशास्त्री थे और उनके पीछे झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई हुई।

अपने जीवनकाल में ही इन्हें जनता 'देवी' समझने और कहने लगी थी। इतना बड़ा व्यक्तित्व जनता ने अपनी आँखों देखा ही कहाँ था। जब चारों ओर गड़बड़ मची हुई थी। शासन और व्यवस्था के नाम पर घोर अत्याचार हो रहे थे। प्रजाजन-साधारण गृहस्थ, किसान मजदूर-अत्यंत हीन अवस्था में सिसक रहे थे। उनका एकमात्र सहारा-धर्म-अंधविश्वासों, भय त्रासों और रूढियों की जकड़ में कसा जा रहा था। न्याय में न शक्ति रही थी, न विश्वास। ऐसे काल की उन विकट परिस्थितियों में अहिल्याबाई ने जो कुछ किया-और बहुत किया।-वह चिरस्मरणीय है। कलकत्ता से बनारस तक की सड़क, बनारस में अन्नपूर्णा का मन्दिर , गया में विष्णु मन्दिर उनके बनवाये हुए हैं। इन्होंने घाट बँधवाए, कुओं और बावड़ियों का निर्माण करवाया, मार्ग बनवाए, भूखों के लिए सदाब्रत (अन्नक्षेत्र) खोले, प्यासों के लिए प्याऊ बिठलाईं, मंदिरों में विद्वानों की नियुक्ति शास्त्रों के मनन-चिंतन और प्रवचन हेतु की। उन्होंने अपने समय की हलचल में प्रमुख भाग लिया। रानी अहिल्याबाई ने इसके अलावा काशी, गया, सोमनाथ, अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, द्वारिका, बद्रीनारायण, रामेश्वर, जगन्नाथ पुरी इत्यादि प्रसिद्ध तीर्थस्थानों पर मंदिर बनवाए और धर्म शालाएं खुलवायीं। ऐसी सनातन हिन्दू दैवीय शक्ति स्वरूप माता अहिल्या बाई होलकर को शत शत नमन।।

विशेष

पूर्ण शक्ति पीठ विंध्यवासिनी धाम

सृष्टि के पूर्व से सृष्टि के बाद तक आदिशक्ति पीठ

"शिव पुराण और श्रीमद्भागवत शिव पुराण में मां विंध्यवासिनी को सती माना गया है तो श्रीमद्भागवत में नंदजा देवी कहा गया है। इन्हें एकाननशा नाम भी दिया गया है। एकाननशा जी वही देवी हैं जो यशोदा जी के गर्भ से जनमीं थीं। उन्ही को कृष्ण से बदल कर वासुदेव जी ले गए थे। इसीलिए इनको कृष्णअनुजा भी कहा जाता है। मां के अन्य नाम कृष्णानुजा, वनदुर्गा भी शास्त्रों में वर्णित हैं।"

यह सृष्टि की शक्ति का केंद्र है। वह केंद्र, जिसमे से कुछ अंश मात्र लेकर जगत गतिमान है। यह वह केंद्र है जो सृष्टि से पहले भी था, अभी भी है और सृष्टि के बाद भी रहेगा ही। यह बीज तत्व है सम्पूर्ण ब्रह्मांड का। वह नाभिक है जिसमे ब्रह्मांड की समस्त ऊर्जा संघनित रहती है। आदि शक्ति के साथ आदिदेव शिव के सम्मिलन का पीठ भी यही है। इस पीठ की गाथा अलेख्य , अवर्णनीय है। वेदों, पुराणों, स्मृतियों, उपनिषदों आदि से लेकर श्रीमद बाल्मीकीय रामायण और महाभारत तथा जैन, बौद्ध आदि ग्रंथों में इस पीठ की महिमा जगविदित है।

संजय तिवारी

मार्कंडेय पुराण में वर्णित देवी महात्म्य में कहा गया है कि जब देव-असुर संग्राम हुआ और देवता राक्षसों से पराजित होने लगे तो वे भगवान विष्णु के पास शरणागत हुए। तब भगवान विष्णु सर्वप्रथम अपने तेज को स्वयं से अलग करते हैं, फिर सभी देवता अपना-अपना तेज भाग देते हैं और उसी से आद्यशक्ति मां प्रकट होती हैं। दार्शनिक रूप से इसे काल (समय) के अग्नि रूप में प्रदर्शित किया गया। उसका वर्ण काला, किंतु सिंदूर से आवेष्ठित है और उससे किरणें निकलती रहती हैं। वह सभी प्राणियों की स्वामिनी हैं। ब्रह्मा, विष्णु, देवतागण, दैत्य, पशु-पक्षी एवं संपूर्ण चर-अचर जगत उन्हीं के प्रभाव से संचालित होते हैं। मुख्य रूप से चामुंडा संहार और विनाश की अधिष्ठात्री देवी हैं। आद्यशक्ति सभी की मनोकामनाएं पूर्ण करती हैं। उन्हें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के रूप में कार्य करने वाली महाशक्ति कहा गया है और त्रिदेवों की स्त्री शक्ति के रूप में भी स्मरण किया जाता है। विंध्याचल पर्वत के मस्तक पर विराजमान होने के कारण यही आद्यशक्ति विंध्यवासिनी देवी के रूप में प्रसिद्ध हुईं। यह लोकहित के लिए विंध्य क्षेत्र में महासरस्वती, महाकाली एवं महालक्ष्मी का रूप धारण करती हैं।

जागृत शक्तिपीठ दुख में डूबे शिव ने सती के जलते हुए शरीर को उठाकर विनाश नृत्य किया। इसे रोकने के लिए विष्णु ने सुदर्शन चक्र का इस्तेमाल कर सती की देह के टुकड़े कर दिए थे। ऐसे में जहां-जहां सती के शरीर के अंग गिरे, वो स्थान शक्तिपीठ बन गए। शक्तिपीठों के स्थानों और संख्या को लेकर ग्रंथों में अलग बातें कही गई हैं। कहीं 51 तो कहीं 52 शक्तिपीठों की बात कही गई है।इन्हीं शक्तिपीठों में से विंध्यवासिनी मंदिर को सम्पूर्ण जागृत शक्तिपीठ भी माना जाता है। ब्रह्माजी ने भी जुड़ी कथा माना जाता है कि सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी ने सबसे पहले अपने मन से मनु और शतरूपा को उत्पन्न किया था। विवाह के बाद मनु ने अपने हाथों से देवी की मूर्ति बनाकर लगभग 100 सालों तक तपस्या की। उनकी तपस्या से संतुष्ट होकर देवी ने उन्हें निष्कण्टक राज्य, वंश-वृद्धि एवं परम पद पाने का आशीर्वाद दिया। वर देने के बाद महादेवी विंध्याचल पर्वत पर चली गई। तब से विंध्यवासिनी की पूजा होने लगी।

वेद, पुराण, जैन व बौद्ध ग्रंथों में देवी शक्ति पूजा के विशद विवरण मध्यकाल के विविध ग्रंथों में मिलते हैं। पुराणों, जैन और बौद्ध ग्रंथों में इसकी चर्चा बहुतायत मिलती है। वेदों में भी शक्ति की अर्चना के अंश मौजूद हैं। ऋग्वेद में स्वयं मां अपने स्वरूप के बारे में कहती हैं कि मैं ही संपूर्ण जगत की अधीश्वरी हूं। धन, ज्ञान, योग्यता मैं ही देती हूं। शत्रुओं के नाश का कारण मैं ही हूं। मार्कंडेय पुराण में वर्णित दुर्गा सप्तशती में माता के तीनों स्वरूपों की आराधना के निर्देश हैं। शाक्त मान्यता के लोग नवरात्र पूजन के प्रथम तीन दिन दुर्गा रूप, अगले तीन दिन लक्ष्मी रूप और अंतिम तीन दिन सरस्वती रूप की आराधना करते हैं। देवी पुराण में यही शक्ति दुर्गा, उमा, शिवा देवी, ब्राह्मणी, विंध्यवासिनी, चामुंडा, शक्ति, पराशक्ति, गौरी, कात्यायनी, कौशिकी, पार्वती, नारायणी, मीना, धूमा, अंबिका, लक्ष्मी, चंडी, कपालिनी, काली, महिषासुर मर्दनी, नंदा, भवानी, तारा, वैष्णवी, महालक्ष्मी, श्वेता एवं योगेश्वरी आदि सैकड़ों नामों से जानी जाती है। सभी देवियों की मूल प्रकृति, कार्य एवं महत्व एक हैं। विंध्यवासिनी देवी का उल्लेख महाभारत, वाल्मीकि रामायण, मार्कंडेय पुराण, कल्कि पुराण, देवी पुराण, देवी भागवत, श्रीमदभागवत, लक्ष्मी यंत्र, हरिवंश पुराण, वामन पुराण, दुर्गा सप्तशती, चंद्रकला नाटिका और कादंबरी जैसे महाकाव्यों, पुराणों और साहित्य में है।

शिव पुराण और श्रीमद्भागवत शिव पुराण में मां विंध्यवासिनी को सती माना गया है तो श्रीमद्भागवत में नंदजा देवी कहा गया है। इन्हें एकननशा नाम भी दिया गया है। एकननशा जी वही देवी हैं जो यशोदा जी के गर्भ से जनमीं थीं। उन्ही को कृष्ण से बदल कर वासुदेव जी ले गए थे। इसीलिए इनको कृष्णअनुजा भी कहा जाता है। मां के अन्य नाम कृष्णानुजा, वनदुर्गा भी शास्त्रों में वर्णित हैं। शास्त्रों में इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि आदिशक्ति देवी कहीं भी पूर्णरूप में विराजमान नहीं हैं। लेकिन, विंध्याचल ही ऐसा स्थान है जहां देवी के पूरे विग्रह के दर्शन होते हैं। शास्त्रों के अनुसार, अन्य शक्तिपीठों में देवी के अलग-अलग अंगों की प्रतीक रूप में पूजा होती है।

त्रिकोण पथ विंध्याचल के त्रिकोण पथ दुर्गा, लक्ष्मी एवं सरस्वती के दया द्वार खोलते हैं, जिससे श्रद्धालुओं के दैहिक, दैविक और भौतिक ताप मिटते हैं। सत, रज और तम संतुलित होकर जीव को मातृधाम की यात्रा करने के योग्य एवं पवित्र कर देते हैं। विश्वास और तंत्र पथ के अनुसार, अलग-अलग देवी के तीन अलग-अलग रूपों की अलग-अलग विधि से उपासना की जाती है। जनसाधारण मां के सौम्य रूप की आराधना करते हैं। देवी के प्रचंड रूप की पूजा कापालिक और कालमुख जैसे घोर पंथी करते हैं। इसमें पंचमकार तक का प्रयोग होता है। कामरूपिणी देवी की उपासना शाक्त लोग करते हैं। ये देवी को त्रिपुर सुंदरी, आनंद भैरवी और ललिता आदि नामों से पुकारते हैं। यहां भैरव को देवी की आत्मा माना गया है, जिनके नौ व्यूह हैं- काल व्यूह, कुल व्यूह, नाम व्यूह, ज्ञान व्यूह एवं अहंकार व्यूह आदि प्रमुख हैं। विंध्याचल में इन तीनों रूपों की स्थापना है।

"त्रेता युग में भगवान श्रीरामचन्द्र सीताजीके साथ विंध्याचल आए थे। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम द्वारा स्थापित रामेश्वर महादेव से इस शक्तिपीठ की माहात्म्य और बढ गया है। द्वापरयुग में मथुरा के राजा कंस ने जब अपने बहन-बहनोई देवकी-वसुदेव को कारागार में डाल दिया और वह उनकी सन्तानों का वध करने लगा। तब वसुदेवजीके कुल-पुरोहित गर्ग ऋषि ने कंस के वध एवं श्रीकृष्णावतार हेतु विंध्याचल में लक्षचण्डी का अनुष्ठान करके देवी को प्रसन्न किया। जिसके फलस्वरूप वे नन्दरायजीके यहाँ अवतरित हुई।"

शिव- शक्ति संयुक्त पीठ

दार्शनिक सत्ता में शिव और शक्ति आदि तत्व हैं। शक्ति ही अंतर्मुखी होने पर शिव हैं और शिव ही बहिर्मुखी होने पर शक्ति हैं। इसलिए 12 महापीठों में भी इस धाम का पावन स्थान है। यद्यपि बाबा भोलेनाथ को काशी बहुत प्रिय है, परंतु शक्ति की उपस्थिति के कारण विंध्य क्षेत्र भी उन्हें उतना ही प्रिय है। इसी कारण इसे छोटी काशी कहा जाता है। तारकेश्वर महादेव से लेकर विरोही तक विंध्य क्षेत्र में असंख्य मंदिर और कुंड हैं, जिनमें तारकेश्वर महादेव, पंचमुखी महादेव, लोंहदी महावीर, संकट मोचक महावीर, कृष्ण मंदिर, मुक्तेश्वर महादेव, तारा देवी, रामेश्वर महादेव, दुग्धेश्वर महादेव, अक्रोधेश्वर लिंग, वीर भद्रेश्वर मंदिर, गोकणेश्वर महादेव, कामतेश्वर महादेव, कंकाल काली नंदजा, नारायण कुंड, लक्ष्मी कुंड, ब्रह्म कुंड, सप्तर्षि कुंड, नकादि कुंड, धर्मकुंड, गोकर्ण कुंड, सीता कुंड, रामकुंड, मुक्ति कुंड, भैरव कुंड श्मशान तारा एवं भैरव कुंड स्थित तारा शिवालय-श्रीयंत्र आदि विंध्यधाम के वैभव और प्राचीनता को प्रमाणित करते हैं। भगवान राम ने त्रेता युग में विंध्याचल आकर शिवपुर के निकट रामगंगा घाट की प्रेतशिला पर अपने पूर्वजों का तर्पण किया।

भारत के बाहर भी अनेक प्राचीन देशों जैसे मिस्त्र, सुमेरिया, बेबीलोनिया, अक्काद, यूनान, रोम एवं चीन आदि में शक्ति पूजा के व्याख्यानों एवं स्थलों की विशेष चर्चा है। मातृ देवी के रूप में सर्जक, पालक एवं संहारक भाव से ज्ञान, धन और रक्षा के लिए उनकी पूजा की जाती थी. सिन, शमस्, इस्तर, ईया, अस्सु, एन, बेले एवं थीटिस त्रिक की अर्चना प्रचलित थी. उक्त देवियां हंसवाहिनी, उलूकवाहिनी और पशुवाहिनी मानी जाती हैं।

माता यशोदा की पुत्री एकानंशा

मां विंध्यवासिनी का जन्म भी ठीक उसी काल मे हुआ जिस काल मे योगेश्वर कृष्ण का अवतरण हुआ। ठीक वही समय, वही तिथि, वही क्षण। माता यशोदा ने पुत्री एकानंशा को उसी रात में जन्म दिया गोकुल में जिस रात जेल में माता देवकी ने कृष्ण को जन्म दिया । परिस्थिति ऐसी कि दोनों शिशु बदल गए। कथा सभी जानते हैं। धरती को कंस जैसी आसुरी वृत्तियों से मुक्ति के लिए ऐसा करना पड़ा। माँ एकानंशा का ही दरबार है विंध्य पर्वत पर। जब कंस ने देवकी की आठवीं संतान के रूप में उनकी गोद से एकानंशा को उठा कर पटकना चाहा तो एकानंशा

उसके हाथ से छूटते ही आसमान में उड़ गईं और विंध्य पर्वत पर आकर विराजमान हो गईं। उनको कलियुग ने मां विंध्यवासिनी की संज्ञा दी ।

श्रीमद्देवीभागवत के दशम स्कन्ध में कथा आती है, सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने जब सबसे पहले अपने मन से स्वायम्भुवमनु और शतरूपा को उत्पन्न किया। तब विवाह करने के उपरान्त स्वायम्भुव मनु ने अपने हाथों से देवी की मूर्ति बनाकर सौ वर्षो तक कठोर तप किया। उनकी तपस्या से संतुष्ट होकर भगवती ने उन्हें निष्कण्टक राज्य, वंश-वृद्धि एवं परम पद पाने का आशीर्वाद दिया। वर देने के बाद महादेवी विंध्याचलपर्वत पर चली गई। इससे यह स्पष्ट होता है कि सृष्टि के प्रारंभ से ही विंध्यवासिनी की पूजा होती रही है। सृष्टि का विस्तार उनके ही शुभाशीषसे हुआ।

त्रेता युग में भगवान श्रीरामचन्द्र सीताजीके साथ विंध्याचल आए थे। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम द्वारा स्थापित रामेश्वर महादेव से इस शक्तिपीठ की माहात्म्य और बढ गया है। द्वापरयुग में मथुरा के राजा कंस ने जब अपने बहन-बहनोई देवकी-वसुदेव को कारागार में डाल दिया और वह उनकी सन्तानों का वध करने लगा। तब वसुदेवजीके कुल-पुरोहित गर्ग ऋषि ने कंस के वध एवं श्रीकृष्णावतार हेतु विंध्याचल में लक्षचण्डी का अनुष्ठान करके देवी को प्रसन्न किया। जिसके फलस्वरूप वे नन्दरायजीके यहाँ अवतरित हुई।

मार्कण्डेयपुराण के अन्तर्गत वर्णित दुर्गासप्तशती (देवी-माहात्म्य) के ग्यारहवें अध्याय में देवताओं के अनुरोध पर भगवती उन्हें आश्वस्त करते हुए कहती हैं, देवताओं वैवस्वतमन्वन्तर के अट्ठाइसवें युग में शुम्भऔर निशुम्भनाम के दो महादैत्य उत्पन्न होंगे। तब मैं नन्दगोप के घर में उनकी पत्नी यशोदा के गर्भ से अवतीर्ण हो विन्ध्याचल में जाकर रहूँगी और उक्त दोनों असुरों का नाश करूँगी।

लक्ष्मीतन्त्र नामक ग्रन्थ में भी देवी का यह उपर्युक्त वचन शब्दशः मिलता है। ब्रज में नन्द गोप के यहाँ उत्पन्न महालक्ष्मीकी अंश-भूता कन्या को नन्दा नाम दिया गया। मूर्तिरहस्य में ऋषि कहते हैं- नन्दा नाम की नन्द के यहाँ उत्पन्न होने वाली देवी की यदि भक्तिपूर्वक स्तुति और पूजा की जाए तो वे तीनों लोकों को उपासक के आधीन कर देती हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण के श्रीकृष्ण-जन्माख्यान में यह वर्णित है कि देवकी के आठवें गर्भ से आविर्भूत श्रीकृष्ण को वसुदेवजीने कंस के भय से रातोंरात यमुनाजीके पार गोकुल में नन्दजीके घर पहुँचा दिया तथा वहाँ यशोदा के गर्भ से पुत्री के रूप में जन्मीं भगवान की शक्ति योगमाया को चुपचाप वे मथुरा ले आए। आठवीं संतान के जन्म का समाचार सुन कर कंस कारागार में पहुँचा। उसने उस नवजात कन्या को पत्थर पर जैसे ही पटक कर मारना चाहा, वैसे ही वह कन्या कंस के हाथों से छूटकर आकाश में पहुँच गई और उसने अपना दिव्य स्वरूप प्रदर्शित किया। कंस के वध की भविष्यवाणी करके भगवती विन्ध्याचल वापस लौट गई।

चारों वेद की साक्षात विग्रह

मां विंध्यवासिनी समग्र सृष्टि की प्राण ही हैं। इस पीठ के प्राचीन भूगोल से लेकर वर्तमान स्वरूप के बारे में इतिहास में बहुत कुछ दर्ज है। सनातन शक्ति साधना के केंद्र तो हैं ही, मां स्वयं में चारों वेदों की साक्षात स्वरूप भी हैं। यह अद्भुत है कि मां विंध्यवासिनी के चार रूप चार वेदों की प्रतीक हैं। अनादि काल से विंध्याचल में विराजमान मां विंध्यवासिनी देवी चार रूपों में अपने भक्तों का पालन करती हैं। सभी रूपों की नित्य आरती होती है। मान्यता है कि चारों रूप का दर्शन करने से भक्तों की कोई भी कामना अधूरी नहीं रहती है।

ब्रम्ह मुहूर्त में मां विंध्यवासिनी के बाल स्वरूप का दर्शन होता है। इस रूप की आरती भोर में तीन से चार बजे के बीच होती है, इसे मंगला आरती कहते हैं। मां के इस स्वरूप का दर्शन करने से सदैव मंगल होता है। मध्यान्ह के समय मां के युवा रूप का दर्शन होता है। इस रूप की आरती मध्यान्ह बारह से एक बजे तक होती है। इसे मध्यान्ह या राजश्री आरती कहते हैं। इस रूप में मां अर्थ की अभिलाषा की पूर्ति करती हैं। सायंकाल में मां विंध्यवासिनी प्रौढ़ रूप में नजर आती हैं। इस रूप के लिए छोटी आरती सांय सवा सात बजे से सवा आठ बजे तक होती है। इस स्वरूप से मां अपने भक्तों की सर्वकामना को पूर्ण करती हैं। चौथे रूप में मां वृद्धावस्था में मोक्ष प्रदायिनी हैं। ये देव-दरबार काल होता है और इसमें मां अपने भक्तों को देव-जननी के रूप में दर्शन देती हैं। इस रूप के लिए रात्रि में बड़ी आरती साढ़े नौ बजे से साढ़े दस बजे तक होती है। इस तरह से मां के चार रूप भक्तों के धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की कामना की पूर्ति करते हैं। मां का पहला रूप ऋगवेद से जोड़ता है, इसमें जीवन संस्कृति अर्थात मानव धर्म की स्थापना है। दूसरा रूप यजुर्वेद से संबंधित है, इसमें अर्थ एवं ऐश्वर्य का वर्णन मिलता है। तीसरा रूप सामवेद से जुड़ा है, इस वेद में गीत-संगीत के श्लोक का वर्णन मिलता है तथा मां का चौथा रूप अथर्ववेद का प्रतीक है, इसमें मोक्ष प्रदान करने वाले श्लोक मंत्राब्ध हैं। मां विंध्यवासिनी देवी के चार रूप, चार कामना व चार वेदों से मां अपने भक्तों का पालन करती हैं।

काव्य फलक

राजेश राज
गोरखपुर

जाने कितनी राम कथाएं,
जग में बिना कही।
सब को तुलसी मिल जाएं,
होता सौभाग्य नहीं।

होठों पर अतृप्ति मन में,
तंत्रास लिए फिरते।
जाने कितने राम यहां,
वनवास लिए फिरते।

जनक सुता की आंख न जाने
कितनी बार बही।
सबको तुलसी.......

छलने के हथकंडे रोज,
नए अपनाता है।
अब मारीच चैनलों का,
विज्ञापनदाता है।
न्याय व्यवस्था भी अब पहले जैसी
नहीं रही।

सबको तुलसी......
मेरी और तुम्हारी भी तो,
राम कहानी है।
अपने मन की पीड़ा बोलो,
किसने जानी है।
व्यथा अयोध्या की सच पूछो जाती
नहीं कही।
सबको तुलसी......

डॉ. गौरी मिश्रा
नैनीताल

ये मेरे देश की माटी है

जिस पर जन्म लिया वीरों ने
जिस पर गर्व किया धीरों ने
जिसको पूजा दिलगीरों ने
जो कान्हा ने चाटी है
मेरे देश की माटी है
ये मेरे देश की माटी है
जिसने फूल खिला कर प्यारे
जग को खुश्बू बांटी है
मेरे देश की माटी है
ये मेरे देश की माटी है।

जिस धरती ने दांत गिने हैं
बचपन में शेरों के
जिस धरती ने स्वाद चखे हैं
शबरी के बेरों के
बना घास की रोटी खाई
भटका जंगल जंगल
किंतु गिराए मान संधि के
अकबर की टेरों के
उस राणा की गौरव गाथा
गाती हल्दीघाटी है
मेरे देश की माटी है
ये मेरे देश की माटी है।

जिस धरती के चरण छुए हैं
सागर की लहरों ने
जिस धरती को गीत सुनाए
हवा चला बहरों ने
जिस धरती को तिलक किया
है
सूरज की किरणों ने
जिस धरती पर भरी चौकड़ी
जंगल के हिरनों ने
उसने प्यार उगाकर दिल में
जड़ नफरत की काटी है
मेरे देश की माटी है
ये मेरे देश की माटी है।

जिस धरती को मां कहते हैं
जिस के वीर सिपाही
जिसको अपनी जां कहते हैं
जिस के वीर सिपाही
घर से रहना दूर सरहदों
की करना निगरानी
को अपना ईमां कहते हैं
जिस के वीर सिपाही
हंसकर प्राण निछावर करना
वीरों की परिपाटी है
मेरे देश की माटी है
ये मेरे देश की माटी है।

नीलम दीक्षित
मुम्बई

गीत

नेह बदरिया नीर नदी बन
आंखों आंखों स्वप्न सधे हैं
काजल की काली रेखाएं
सरिता पर ज्यूँ बांध बांधें हैं

नख बन भाव कुरेदें बातें
यादें मोहक धूमिल छवि की
टूट रहे पतवार हृदय के
तूफानी लय है सांसों की

पर्वत से तटबंध दिलों पर
सकुचाते उदगार बंधें हैं
काजल की....

मुनरी कंगन छागल बिछुए
सबकी सबसे रार हुई है
गजरे की अनबन बालों से
अबकी पहली बार हुई है

आतुर है श्रृंगार मिलान को
लोक लाज के बांध बंधें हैं
काजल की...

उम्मीद

सुषुप्त कण
अंकुरित हो उठा
मृदा की तहों के नीचे
बस एक किरण
पर्याप्त थी उम्मीद की...

सो गए होंगें
दूसरे कई
हमेशा के लिए
जिन्होंने
रश्मियों के आने तक
हौसला नहीं रखा...

अंकुरित होने और
सामर्थ्यवान हो जाने
के बीच भी
हर लड़ाई
जीती जाती है
बस उस एक
रश्मि से उम्मीद की।

डॉ० भावना कुअँर
सिडनी, ऑस्ट्रेलिया

ग़ज़ल

अपने जीने के लिए शहर नया माँगते हैं
लोग धरती ही नहीं नभ भी खुला माँगते हैं

कुछ गुनहगारों के संग ऐसा भी हो जाता है
जब वो अपने ही गुनाहों की सज़ा माँगते हैं

इस क़दर आने लगा रिश्तों में भी मैलापन
अब तो रिश्ते भी सभी मन को धुला माँगते हैं

इतना आसाँ भी ना हो कोई भी चला आए
दिल के हम चारों तरफ़ ऐसा क़िला माँगते हैं

बढ़ गयी इतनी घुटन बंद से इन कमरों में
खिड़कियाँ खोल के हम ताज़ा हवा माँगते हैं

लोग ऐसे कि जिन्होंने हमेशा दर्द दिए
हम हैं वो उनके भी जीने की दुआ माँगते हैं

ग़ज़ल

आओ फिर खेलते हैं खेल वो बचपन की तरह
और कब तक यूँ ही लड़ते रहें दुश्मन की तरह

प्यार की जोत जो दिल में तिरे जल जाएगी
तू भी जाएगा निखर आग में कुंदन की तरह

चाँदनी चाँद में हमने यूँ सिमटती देखी
जैसे कमसिन कोई शर्माए है दुलहिन की तरह

दिल के मंदिर में बसा लूँ तिरी भोली सूरत
और माथे पे सजा लूँ तुझे चंदन की तरह

अब न इस दिल में ख़ुशी है न तो हसरत बाक़ी
ज़िंदगी हो गयी खाली किसी बर्तन की तरह

अर्चना पंडा
कूपर्टिनों, अमेरिका

ग़ज़ल

पहले लगता था प्रदेश तक ही परिवार हमारा है
भारत से निकले तो जाना हिंदुस्तान हमारा है!

डॉक्टर इंजीनियर ज़रूरत जहाँ कहीं प्रतिभा की
सारी दुनिया में पहले नंबर पर भारतवासी
राह दिखाता पूरे जग को भारत वो ध्रुव तारा है!

देखा बाहर बड़े घरों में बड़े बड़े हैं ग़म
मुरझाये चेहरों को हंसना सिखलाते हैं हम
जहाँ गए अपनेपन से सबका संसार संवारा है!

जहाँ गए हम वहाँ बना दी हमने मथुरा काशी
राम हमारे दिल में बसते ऐसे हम बनवासी
तन-मन-धन वारा जब-जब भारत ने हमें पुकारा है!

भारत की संस्कृति मर्यादा अब भी साथ हमारे
यहाँ मंदिरों में भी जाके पावन मन्त्र उच्चारे
तन मन को पावन करती गंगा की निर्मल धारा है

कर्म योग के मन्त्र अभी भी याद हमें हैं सारे
धर्म जाति से ऊपर हम मानवता के रखवारे
सारी दुनिया अब अपनी है सबसे भाई चारा है!

शक्ति ध्यान की हमने सारी दुनिया को सिखलाई
सहज योग ने मानव की खुद से पहचान कराई
वो अपने भीतर है जिसको ढूंढ हा जग सारा है!

श्वेता सिंह 'उमा'
मास्को, रुस

शब्दों का कारोबार

शब्दों का कारोबार
नफ़ा तो कभी नुक़सान।
दिमाग़ से निकले तो सख़्त,
दिल से फूटे तो आसान।

घर पर जब तक रहते थे
चाहा सदा घर से दूर जाना।
अब घर से कोसों दूर हैं तो
चाह है वापस घर लौट आना।

जिस शहर में बचपन बीता
आज अनजाना सा लगता है।
अपनी महबूब से बिछड़ा हुआ
कोई दीवाना सा लगता है।

बचपन की यादों को समेटे
वो बच्चा,अब तक ज़िंदा है।
घोसले को छोड़ उड़ तो गया
वापसी को बेताब परिंदा है।

वक़्त के इम्तिहानों ने सिखा दिया,
वक़्त बदलने में वक़्त नहीं लगता है।
ख़ुशियों की चाहत का तिलस्म,
बस दूर से ही बहुत चमकता है।

उस फ़रेबी चमक को पाने के लिए
कई अनमोल रिश्तों को तोड़ आए।
अपनी ज़िंदगी के सच्चे नायाब
चमकीले लम्हों को पीछे छोड़ आए।

चलो अब वापस चलते हैं
अपनों के बीच, बचपन की छाँव में।
राम रहीम की वो पाकीज़ा यारी,
ज़िंदा है आज भी मेरे उस गाँव में।

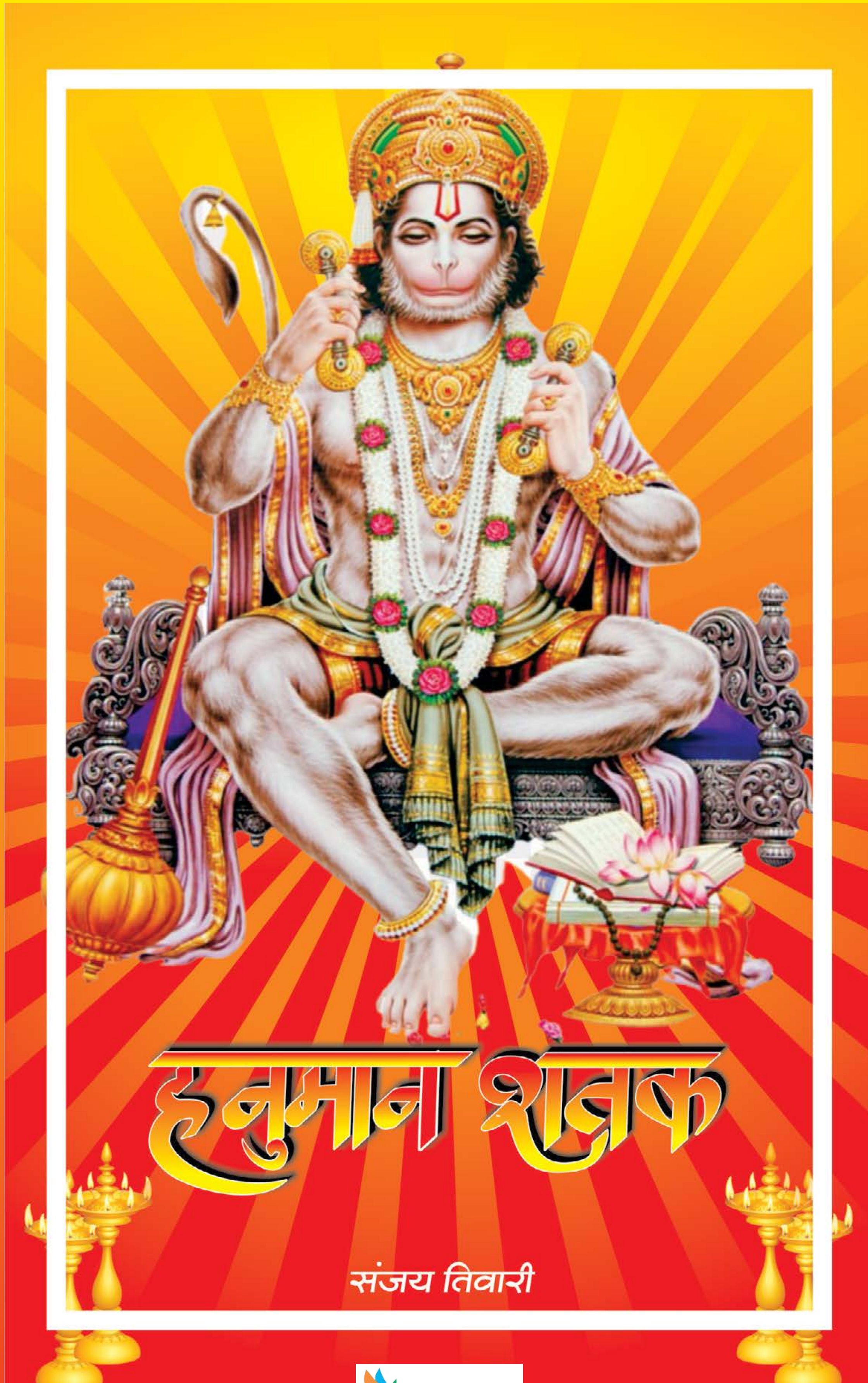

संस्कृति पर्व प्रकाशन

संस्कृति पर्व

Sanskriti Parva

(भारत संस्कृति न्यास का प्रकल्प)

सदस्यता फॉर्म - SUBSCRIPTION FORM

नाम
NAME ____________________

पिता/पति
FATHER/HUSBAND ____________________

पत्रिका के लिए स्थाई डाक का पता
PERMANENT POSTAL ADDRESS FOR MAGAZINE ____________________

____

____

पिन कोड
PIN CODE ____________________

कन्ट्री कोड
COUNTRY CODE ____________________

ई-मेल
MAIL ID ____________________

मोबाइल नं०
MOBILE NO. ____________________

सदस्यता का प्रकार एवं शुल्क / TYPES OF MEMBERSHIP & FEE

	भारत में /IN INDIA	अप्रवासियों के लिए/FOR NRIs
वार्षिक/ANNUAL	1000/-	$100
त्रैवार्षिक/THREE YEARS	2500/-	$250
पंच वार्षिक/FIVE YEARS	5000/-	$400
आजीवन व्यक्ति/LIFETIME PERSON	11000/-	$750
आजीवन संस्था/LIFETIME INSTITUTION	21000/-	$1000

शुल्क का भुगतान नगद, ड्राफ्ट या चेक से किया जा सकता है। ऑनलाइन भुगतान पत्रिका के खाते में किया जा सकता है। चेक या ड्राफ्ट 'संस्कृतिपर्व प्रकाशन' के नाम होना चाहिए।

Account Detail

NAME : SANSKRITIPARVA PRAKASHAN,
BANK : HDFC, PRANAY TOWERS, LUCKNOW.
A/c NO. : 50200035311373 , IFSC : HDFC0000594, MICR : 226240002, BRANCH CODE: 000594

पंजीकृत कार्यालय : बी-64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड, गोरखपुर-273001
लखनऊ कार्यालय : 2/43, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दिल्ली कार्यालय : बी-38 डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024
सम्पर्क : + 91 94508 87186-87
यू.एस कार्यालयः 17413 Blackhawk St. Granada Hills, CA 91344 USA, Cell: 1-818-815-9826

श्री रामचरितामानस

सुन्दरकाण्ड

(मारवाड़ी)

अनिता अग्रवाल

संस्कृति पर्व प्रकाशन

भारत संस्कृति न्यास

नवीन भारत, प्रवीण भारत
New India, Skilled India

उद्देश्य

सनातन संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार के लिए सतत प्रयत्नशील

राष्ट्रीय संस्कृति विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए प्रयासरत

प्राथमिक से स्नातक तक पाठ्यक्रम में संस्कृति शिक्षा को अनिवार्य रूप से शामिल कराने का प्रयास

राष्ट्रीय संस्कृति आयोग का गठन एवं राष्ट्रीय संस्कृति दिवस के निर्धारण के लिए प्रयास

पत्र व्यवहार

बी–64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड गोरखपुर–273001

1–454 वास्तुखण्ड, गोमती नगर लखनऊ–226010

✆ +91:–9450887186, +91:–9450887187

Follow us

पंजीकृत कार्यालय

बी–38, डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली–110024

Contact : 011-24337573

bharatsanskritinyas@gmail.com

Website - www.bharatsanskritinyas.org